आनन्द-मठ

मूल लेखक—

बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय

अनुवादक—

लक्ष्मीनारायण सरोज

प्रकाशक—

हिन्दी-प्रचारक पुस्तकालय

ज्ञानवापी, बनारस सिटी

मूल्य २॥)

प्रकाशक—
निहालचन्द वर्म्मा
हिन्दी-प्रचारक पुस्तकालय
ज्ञानवापी, बनारस सिटी

मुद्रक—
कृष्णाचन्द्र बेरी
विद्या-मन्दिर प्रेस,
२४।१८ रामघाट बनारस

उपक्रमणिका

अतीव विस्तृत जंगल है। इस जङ्गल में अधिकांश वृक्ष शालके है, इसके अतिरिक्त और भी कितने ही तरह के हैं। फुनगी-फुनगी, पत्ते-पत्तोसे मिले हुए वृक्षोंकी श्रेणी अनन्त दूर तक चली गयी है। विच्छेदशून्य, छिद्रशून्य, आलोक-प्रवेशका हरेक रास्ता बन्द है। इस तरह पल्लवोंका अनन्त समुद्र, कोसपर कोस, सैकडो-हजारों कोसमें फैला हुआ है, वायुकी तरङ्ग पर तरङ्ग विक्षिप्त रूपमें चली जा रही है। नीचे घना अन्धेरा, मध्यान के समय भो प्रकाश नहीं आता; भयानक! उस जंगल के भीतर मनुष्य प्रवेश नहीं कर सकते। केवल पत्तोंकी ममरध्वनि और पशुपक्षियों की आवाज के अतिरिक्त वहां और कुछ भी नहीं सुनाई पड़ता।

एक तो यह अति विस्तृत अगम्य अन्धारमय जङ्गल, उस पर रात्रिका समय! आधी रातका समय है। रातका भयावह अन्धेरा छाया हुआ है; जङ्गल के बाहर भी अन्धेरा छाया हुआ है; कुछ दिखाई नहीं देता। जंगलके अन्दर कुहासे के अन्धकार की तरह भयानक अन्धेरा है।

पशु-पक्षी सब निस्तब्ध हैं। कितने ही लक्ष-लक्ष, कोटि-कोटि, पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग, उस जंगल में रहते हैं; लेकिन कोई चूं तक नहीं बोलता है। शब्दमयी पृथिवीकी निस्तब्धता का अनुमान किया जा सकता है; लेकिन उस का अनन्त-शून्य जंगल के सूची भेद्य अन्धार का अनुभव किया जा नहीं सकता।

लेकिन स रातके समय भी; भयानक निस्तब्धता को भेदकर ध्वनि आई—"मेरा मनोरथ क्या सिद्ध न होगा ?"

इस तरह तीन बार वह निस्तब्ध-अन्धकार आलोड़ित हुआ—"तुम्हारा क्या प्रण है ?"

उत्तर मिला,—"मेरा प्रण जीवन सर्वस्व है ?"

प्रति शब्द हुआ,—"जीवन तुच्छ है; सब इसका त्याग कर सकते हैं ?"

"और क्या है ? और क्या है ?"

उत्तर मिला,—"भक्ति ?"

✻ आनन्द-मठ ✻

प्रथम खण्ड

पहला परिच्छेद

सन् १९७६ ई० के गरमी के महीने में एक दिन पदचिह्न नामक एक गांव में बड़ी भयानक गरमी थी। गांव घरोंसे भरा हुआ था, लेकिन मनुष्य दिखाई नहीं देते थे। बाजार में कतार पर कतार दूकानें, विस्तृत बाजार में लम्बी-चौड़ी सड़कें, गलियों में सैकड़ों मिट्टीके पवित्र गृह, बीच-बीचमें ऊँची-नीची अटालिकाएँ थीं। आज सब नीरव हैं। बाजार की दूकानें बन्द हैं, दूकानदार वहां से भागे हुए हैं, कोई पता नहीं। आज बाजार का दिन है, लेकिन बाजार लगा नहीं है, शून्य है। भिक्षा का दिन है, लेकिन भिक्षुक बाहर दिखाई नहीं पड़ते। जुलाहे अपने करघे बन्दकर घरमें पड़े रो रहे हैं। व्यवसायी अपना रोजगार भूलकर बच्चों को गोदमें लेकर विह्वल हैं। दाताओं ने दान बन्द कर दिया है, अध्यापकों ने पाठशाला बन्द कर दी है, शायद बच्चे भी

साहसपूर्वक रोते नहीं हैं। राजपथ पर भीड़ नहीं दिखाई देती, सरोवर पर स्नानर्थियों की भीड़ नहीं है, गृहद्वार पर मनुष्य दिखाई नहीं पड़ते हैं, वृक्षों पर पक्षी दिखाई नहीं पड़ते, चरने वाली गौओं के दर्शन मिलते नहीं हैं, केवल श्मशान में स्यार और कुत्ते हैं। एक बहुत बड़ी अट्टालिका है, उसकी बड़ी-बड़ी चहारदीवारी और गगन चुम्बी गुम्बज दूरसे दिखाई पड़ते हैं। वह अट्टालिका उस गृह-जंगलमें शैल-शिखर-सी दिखाई पड़ती है। उसकी शोभाका क्या कहना है—लेकिन उसके दरवाजे बन्द हैं, गृह मनुष्य-समागम से शून्य है, वायु प्रवेश में भी असुविधा है। उस घरके अन्दर दिन-दोपहर के समय भी अन्धेरा है। अन्धकार में रातके समय एक कमरे में फूले हुए दो पुष्पोंकी तरह एक दम्पति बैठे हुए चिन्तामग्न हैं। उनके सामने अकालका भीषण रूप है।

११७४ ई० में फसल अच्छी नहीं हुई। अतः ११७५ ई० में कुछ अकाल आ पड़ा—भारतवासियों पर तकलीफ पड़ी। लेकिन इसपर भी शासकने पैसा-पैसा, कौड़ी-कौड़ी वसूल कर ली। दरिद्र जनता ने कौड़ी-कौड़ी करके मालगुजारी अदा कर दिनमें एक ही बार भोजन किया। ११७५ के वर्षकी बरसात में अच्छी वर्षा हुई। लोगोंने समझा कि शायद देवता प्रसन्न हुए। आनन्द में फिर मठ-मन्दिरों में गाना-बजाना शुरू हुआ, किसानकी स्त्रीने अपने पतिपर चाँदीके पाजेबके लिये फिर तगादा शुरू किया। लेकिन अकस्मात् आश्विन मासमें फिर देवता विमुख हो गये। कार-कातिक में एक बूंद भी बरसात न हुई। खेतोंमें धानके पौदे सूखकर खंखड़ हो गये। जिसके दो-एक बीघेमें धान हुआ भी, तो राजाने अपनी सेनाके लिये उसे खरीद लिया। जनता भोजन पा न सकी। पहले एक

सन्ध्याको उपवास हुआ, फिर एक समय भी आधापेट भोजन न मिलने लगा। इसके बाद दो-दो सन्ध्या उपवास होने लगा। चैतमें जो कुछ फसल हुई, वह किसीके एक ग्रास भरको भी न हुआ। लेकिन मालगुजारी के अफसर मुहम्मद रजा खां ने मनमें सोचा कि यही समय है, मेरे तपनेका। एकदम उसने दशप्रतिशत मालगुजारी बढ़ा दी। बङ्गाल में घर-घर कुहराम मच गया।

पहले लोगोंने भीख मांगना शुरू किया; इसके बाद कौन भिक्षा देता है? उपवास शुरू हो गया। फिर जनता रोगाक्रान्त होने लगी। गो-बैल हल बेचे गये, बीजके संचित अन्न खा गये, घरबार बेचा, खेतीबारी बेची। इसके बाद लोगोंने लड़कियां बेचना शुरू किया। इसके बाद लड़के बेचे जाने लगे, इसके बाद घरकी गृहलक्ष्मियों का विक्रय प्रारम्भ हुआ। लेकिन इसके भी बाद, लड़की, लड़के, औरतें कौन खरीदता है? बेचना सब चाहते हैं? लेकिन खरीदार कोई नहीं है। खाद्य के अभाव में लोग पेड़के पत्ते खाने लगे। घास खाना शुरू किया। नर्म टहनियां खाने लगे। छोटी जाति की जनता और जंगली लोग, कुत्ते, बिल्ली, चुहे खाने लगे। बहुतेरे लोग भागे, जो भागे, वह लोग विदेश में जाकर अनाहार से मरे। जो नहीं भागे, उन्होंने अखाद्य खाकर, उपवास कर रोगसे जर्जर हो मरने लगे।

रोगको भी समय मिला—ज्वर, हैजा, क्षय, चेचक फैल पड़ा। विशेषत: चेचक का बड़ा प्रचार हुआ। घर-घर लोग महामारी से मरने लगे। कौन किसे जल देता है—कौन किसे छूता है? कोई किसी की चिकित्सा नहीं करता। कोई किसी को नहीं देखता। मर जाने पर शव कोई उठाकर फेंकता नहीं।

अति रमणीय गृह-स्थान आप ही सड़कर बदबू करने लगे। जिस घरमें एक बार चेचक हुआ, रोगी को छोड़कर घरवाले भाग गये।

महेन्द्रसिंह पदचिह्न ग्रामके बड़े धनी व्यक्ति हैं—लेकिन आज धनी-गरीब सब बराबर हैं। इस दुःखपूर्ण अकाल के समय रोगी होकर, उनके आत्मीय-स्वजन, दास-दासी सभी चले गये हैं। कोई मर गया कोई भाग गया। उस बृहत् परिवार में उनकी स्त्री, वह और गोदमें एक शिशु-कन्या मात्र रह गयी है। इन्हीं लोगों की बात कह रहा हूं।

उनकी भार्या कल्याणीने चिन्ता छोड़कर गोशाला में जाकर गऊ-दुही। इसके बाद दूध गर्मकर कन्याको पिलाया और गऊ-को घास, तृण खाने के लिये डाल दिया। बह लौट कर जब आई, तो महेन्द्रने कहा,—"इस तरह कितने दिन चलेगा ?"

कल्याणी बोली,—"ज्यादा दिन नहीं। जितने दिन चले, जितने दिन मैं चला पाती हूं, चला रही हूं: इसके बाद तुम लड़की को लेकर शहर चले जाना।"

महेन्द्र—अगर शहर ही चलना है, तो तुम्हें ही इतनी तकलीफ क्यों दी जाये। चलो न, अभी चलें !"

इसके बाद दोनों में अनेक तर्क-बितर्क हुए।

कल्याणी—शहर में जाने से क्या विशेष उपकार होगा ?

महेन्द्र—वह स्थान भी शायद ऐसे ही जनशून्य, प्राणरक्षा उपाय से रहित हैं।

कल्याणी—मुर्शिदाबाद, कासिम बाजार, या कलकत्ते जाने से प्राणरक्षा हो सकेगी। इस स्थान को तो त्याग देना हर तरह से उचित है।

महेन्द्र ने कहा,—"यह घर बहुत दिनों से पुरुषानुक्रम से संचित धन द्वारा परिपूर्ण है, इन्हें तो चोर मूस ले जायंगे।"

कल्याणी—यदि वह लोग लूटने के लिये आये, तो क्या हम दो जन रक्षा कर सकते हैं? प्राण ही न रहा, तो धन कौन भोगेगा? चलो अभी भी सब बन्द-सन्द करके चले चलें। अगर जिन्दा रह गये, तो फिर आकर भोग करेंगे।

महेन्द्र ने पूछा,—"क्या तुम राह चल सकोगी? कहार सब मर ही गये हैं। बैल हैं, तो गाड़ी नहीं है और गाड़ी है तो बैल नहीं हैं।"

कल्याणी—तुम चिन्ता न करो, मैं पैदल चलूँगी।

कल्याणी ने मन-ही-मन स्थिर किया, न होगा राहमें मरकर गिर पड़ूंगी, यह दोनों जने तो बचे रहेंगे!

दूसरे दिन सवेरे साथ में कुछ धन लेकर, घर-द्वारमें ताला बन्दकर, गायोंको मुक्त कर, और कन्याको गोद में लेकर दोनों जन राजधानी के लिये चल पड़े। यात्राके समय महेन्द्र ने कहा, "राह बड़ी भयानक है। कदम-कदम पर डाकू और लुटेरे छिप रहे हैं, खाली हाथ जाना उचित नहीं है।" यह कहकर महेन्द्र ने फिर घरमें वापस जाकर बन्दूक, गोली, बारूद साथ में ले ली।

यह देखकर कल्याणी ने कहा,—"अगर अस्त्रको बात याद की है, तो जरा लड़की को गोदमें सम्हाल लो, मैं भी हथियार ले लूं।" यह कहकर कल्याणी ने लड़की महेन्द्र के गोदमें देकर घरके भीतर प्रवेश किया।

महेन्द्र ने पूछा,—"तुम कौन सा हथियार लोगी?"

कल्याणी ने घरमें जाकर विषकी एक डिबिया अपने कपड़े के

अन्दर छिपा ली। दुःखके दिनों में भाग्य में क्या जाने क्या बदा है, यही सोचकर कल्याणी ने विष संग्रह कर रखा था।

जेठका महीना है। भयानक गर्मी से पृथिवी अग्निमय हो रही है; हवामें आगकी लपट दौड़ रही है; आकाश तप्त तवेकी तरह जल रहा है, राहको धूल आग की चिनगारी बन गयी हैं। कल्याणी के शरीर से पसीने की धारा बहने लगी, कभी पीपल के नीचे, कभी बड़के नीचे, कभी खजूर के नीचे छाया देखकर तिलमलाती हुई बैठ जाती है। सूखे हुए तालावों का कीचड़ से सना मैला जल पीकर वह लोग राह चलने लगे। लड़की महेन्द्र की गोदमें है—समय-समय पर वह उसे पंखा हांक देते हैं। कभी निविड़ श्यामल पत्ररंजित सुगन्ध कुसुम-संयुक्त वृक्षसे लिपटी हुई लताकी छाया में दोनों जन बैठकर विश्राम करते हैं। महेन्द्र ने कल्याणी को इतना स्रम-सहिष्णु देखकर आश्चर्य किया। पासके ही एक जलाशय से वस्त्रको जल द्वारा तरकर महेन्द्रने उससे कन्या और भार्याका उत्तप्त मस्तिष्क और मुंह धोकर अपेक्षाकृत शान्त किया।

इससे कल्याणी कुछ आश्वस्त अवश्य हुई लेकिन दोनों ही जन भूखसे बड़े ही विह्वल हुए। वह लोग तो उसे भी सहने लगे, लेकिन बालिका की भूख-प्यास उनसे बर्दाश्त न हुई। अतः वहां अधिक देर न ठहरकर वह लोग फिर चल पड़े। उस अग्नि तरंगको पारकर संध्या से पहले वह लोग एक बस्ती में पहुंचे। महेन्द्र के मनमें बड़ी आशा थी कि बसतीमें पहुंचकर वह अपनी स्त्री और कन्याको शीतल जलसे तृप्त कर सकेंगे। प्राणरक्षा के निमित्त मुंह में कुछ आहार डाल सकेंगे लेकिन कहां है? बसती में तो एक भी मनुष्य दिखाई नहीं पड़ता। बड़े-बड़े घर शून्य पड़े हुए हैं, सारे आदमी वहां से भाग गये हैं।

इधर-उधर देखकर एक घरके भीतर महेन्द्रने स्त्री-कन्याको लिटा दिया। बाहर आकर उन्होंने जोरों से पुकारना शुरू किया। लेकिन उन्हें कोई भी उत्तर सुनाई न पड़ा। तब महेन्द्रने कल्याणी से कहा,—"तुम जरा साहस पूर्वक अकेली रहो, देखूं, शायद कहीं कोई गाय दिखाई दे जाय, भगवान् श्रीकृष्ण दया कर दें, तो दूध ले आयें।" यह कहकर महेन्द्र एक मिट्टीकी हंड़िया हाथ में लेकर निकल पड़े।

बहुतेरे बर्त्तन वहीं पड़े हुए थे।

— — — —

दूसरा परिच्छेद

महेन्द्र चले गये। कल्याणी अकेली बालिका को लिये हुई प्रायः जनशून्य स्थानमें घरके अन्दर अन्धाकार में पड़ी चारों तरफ देखती रही। उसके मनमें भयका संचार हो रहा था। कहीं कोई नहीं, मनुष्य मात्र का कोई शब्द सुनाई नहीं पड़ता है; केवल कुत्तों और स्यारोंकी आवाज सुनाई पड़ जाती है। सोचने लगी,—"क्यों उन्हें जाने दिया, न होता थोड़ी और भूख-प्यास बर्दाश्त करती।" फिर सोचा,—"चारों तरफ का दरवाजा बन्दकर बैठूं।" लेकिन एक भी दरवाजे में किवाड़ा दिखाई न दिया। इस तरह चारो तरफ देखते-देखते उसे सामनेके दरवाजे पर एक छाया दिखाई दी। मनुष्याकृति जैसी है, क्षीण-कोयले की तरह काला, नग्न, विकटाकार मनुष्यकी तरह कोई आकर दरवाजे पर खड़ा हो गया। कुछ देर बाद उस छाया नें जैसे अपना एक हाथ उठाया और हाथोंकी लम्बी सूखी उंगलियों से

This is a very good book for those who have ...

संकेत कर किसी को अपने पास बुलाया। कल्याणीका प्राण सूख गया। इसके बाद वैसी ही एक छाया और—शुष्क, कृष्ण-वर्ण, दीर्घाकार, नग्न—पहली छाया के पास आकर खड़ी हो गयी। इसके बाद ही एक और, एक और। इस तरह कितने ही आकर पिशाच घरके अन्दर प्रवेश करने लगे। वहाँ एकान्त स्मशानकी तरह प्रायः भयङ्कर दिखाई देने लगा। वह सब प्रेत जैसी मूर्तियाँ कल्याणी और उसकी कन्याको घेरकर खड़ी हो गयीं। कल्याणी भयसे मूर्छित हो गयी। काले नरकंकालों जैसे पुरुष कल्याणी और उसकी कन्याको उठाकर बाहर निकले और बसती पारकर एक जंगल में घुस गये।

कुछ देर बाद महेन्द्र उस हंड़िया में दूध लिये हुए वहाँ आये। उन्होंने देखा कि वहाँ कोई नहीं है। इधर-उधर खोजा, पहले कन्याके नामसे और फिर स्त्रीका नाम लेकर जोर-जोरसे पुकारने लगे। लेकिन न तो कोई उत्तर मिला और न पता ही लगा।

तीसरा परिच्छेद

जिस वनमें डाकू कल्याणी को लेकर घुसे, वह वन बड़ा ही मनोहर है। यहाँ रोशनी नहीं कि शोभा दिखाई दे, ऐसी आँखें भी नहीं कि दरिद्रके हृदयके सौन्दर्यकी तरह उस वनका सौन्दर्य भी देख सकें। देशमें आहार द्रव्य रहे या न रहे—वनमें फूल हैं, फूलकी सुगन्धसे उस अन्धकार में प्रकाश हो रहा है। बीचकी साफ, सुकोमल और पुष्पावृत जमीन पर डाकूओंने कल्याणी

और इसकी कन्याको उतारा। वह सब उन्हें घेरकर बैठ गये। इसके बाद उन सबमें यह बहस चली, कि इन लोगोंका क्या किया जाये ? कल्याणीका जो कुछ अलङ्कार था, उसे डाकुओंने पहले ही हस्तगत कर लिया है। एक दल उसके हिस्से-बखरे में व्यस्त हो गया। अलङ्कारों के बंट जानेपर एक डाकूने कहा,—"हमलोग सोना-चांदी लेकर क्या करेंगे ? एक गहना लेकर कोई मुझे भोजन दे, भूखसे प्राण जाता है—आज सवेरे केवल पत्ता खाया है।" एकके यह कहने पर सब इसी तरह हल्ला मचाने लगे,—"चावल दो, चावल दो, भूखसे मर रहे हैं, सोना-चांदी नहीं चाहते।" दलपति उन्हें शान्त करने लगा, लेकिन कौन सूनता है, क्रमशः ऊँचे स्वरमें बातें शुरू हुईं, फिर गाली-गलौज शुरू हुई, मार,पीटका भी उपक्रम होने लगा। जिसे-जिसे हिस्से में गहने मिले थे, वह लोग अपने-अपने हिस्सेके गहने खींच-खींचकर दलपतिके शरीर पर मारने लगे। दलपतिने भी दो-एकको मारा। इसपर सब मिलकर आक्रमणकर दलपति पर आघात करने लगे। दलपति अनाहार से क्लिष्ट और शीर्ष तो आप ही था, दो चार आघात में ही गिरकर मर गया। उन क्षुधित, कष्टित, उत्तेजित, और जनशून्य डाकुओं में से एकने कहा,—"स्यारका मांस खा चुके हैं, भूखसे प्राण जा रहा है, आओ भाई! आज इसी. सालेको खायें।" इसपर सबने मिलकर "जयकाली" कहकर उच्चनाद किया। "जयकाली! आज नरमांस खायेंगे।" यह कहकर वह सब नरकंकाल रूप-धारी खिलखिलाकर हँस पड़े और तालियां बजाते हुए नाचने लगे। एक दलपतिके शरीरको भुननेके लिये आग जलानेका इन्तजाम करने लगा। लता-डालियाँ और पत्ते संग्रहकर, उसने चकमक पत्थर द्वारा आग पैदा कर, उन्हें धधकाया-धधक कर

आग बल उठी। आगकी लपटसे पासके आम, खजूर, पनस, नीघू आदिके वृक्षके कोमल हरे पत्ते चमकने लगे। कहीं पत्ते जलने लगे; कहीं घासपर रौशनी से हरियाली हुई तो कहीं अन्धेरा और गाढ़ा हो गया। आग जल जानेपर कुछ लोग दलपतिके कंकालको आगमें फेंकने के लिये घसीटकर लाने लगे। इसी समय एक बोल उठा,—"ठहरो, ठहरो! अगर महामांस ही खाकर आज भूख मिटाना है, तो इस सूखे नरकंकाल को न भूजकर, आओ, इस कोमल लड़की को ही भूंजकर खाया जाये।" एक बोला,—"जो हो, भैया! एक को भूंजो! भूखसे मरते हैं।" इस पर सभोंने लोलुप दृष्टिसे उधर देखा, जिधर अपनी कन्याको लिये हुई कल्याणी पड़ी थी। उन सबने देखा कि वह स्थान शून्य था, न कन्या थी और न माता ही। डाकुओं के आपसी विवाद और मारपीट के समय सुयोग पाकर कल्याणी गोदमें बच्चीको चिपकाये हुई, वनके भीतर भागी थी। शिकारको भागा देखकर वह प्रेतदल "मार-मार" करता हुआ चारों तरफ पकड़ने के लिये दौड़ पड़ा। अवस्था विशेष में मनुष्य जन्तुमात्र हो जाता है।

———

चौथा परिच्छेद

जंगलके भीतर घनघोर अन्धकार है। कल्याणी को उधर राह मिलना मुश्किल हो गया। वृक्षलताओं के गुल्मके कारण एक तो राह कठिन, दूसरे रातका घना अन्धेरा। कांटोंसे छिलती हुई कल्याणी उस आदमखोरों से बचने के लिये

भागी जा रही थी। बिचारी कोमल लड़कीको भी कांटे लग रहे थे। अबोध बालिका गोदमें चीखकर रोने लगी; उसका रोना सुनकर दस्युदल और भी चीत्कार करने लगे। फिर भी, कल्याणी पागलों की तरह जगलमें तीरको तरह घुसती भागी जा रही थी। थोड़ी ही देरमें चन्द्रोदय हुआ। अबतक कल्याणी के मनमें भरोसा था कि अंधेरे में नर-पिशाच उसे देख न सकेंगे, कुछ देर परेशान होकर पीछा छोड़कर लौट जायंगे। लेकिन अब चांदका प्रकाश फैलने से वह अधीर हो उठी। चन्द्रमाने आकाशमें ऊँचे उठकर वनपर अपना रुपहला आवरण फैला दिया। जंगलका भीतरी हिस्सा अन्धेरे में चांदनी से चमक उठा। अन्धकार में भी एक तरहकी उज्ज्वलता फैल गयी। चांदनी बनके भीतर छिद्रोंसे घुसकर ताक-भांक करने लगी। चन्द्रमा जैसे-जैसे ऊपर उठने लगे, वैसे-वैसे प्रकाश फैलने लगा। ज़ंगलके अन्दर अन्धकार अपने में सिमटने लगा। कल्याणी पुत्रीको गोदमें लिये हुई और गहन बन में जाकर छिपने लगी। उजेला पाकर दस्युगण और अधिक शोर मचाते हुए दौड़-धूप, खोज करने लगे। कन्या भी शोर सुनकर और जोर से चिल्लाने लगी। अब कल्याणी भी थककर चूर हो गयी थी; उसने भागना बन्द कर दिया। एक बड़े बृक्षके नीचे कण्टकशून्य जगह देखकर कोमल पत्तियों पर वह वैठ गयी और बुलाने लगी,—"कहां हो, तुम! जिनकी मैं नित्य पूजा करती थी; नित्य नमस्कार करती थी, जिनके एकमात्र भरोसे पर इस जंगलमें घुसनेका साहस कर सकी; कहां हो, हे मधुसुदन!" इस समय भय, भक्तिकी प्रगाढ़तासे, भूख-प्याससे, थकावटसे कल्याणी धीरे-धीरे अचेतन होने लगी। लेकिन आन्तरिक चैतन्यसे उसने सुना, अन्तरिक्षमें स्वर्गीय गीत हो रहा है—

"हरे मुरारे ! मधुकैटभारे ! गोपाल, गोविन्द, मुकुन्द प्यारे !
हरे मुरारे मधुकैटभारे !'

कल्याणी बचपनसे पुराणों का वर्णन सुनती आती है, कि देवर्षि नारद हाथोंमें वीणा लिये हुए आकाशपथ से भुवन-भ्रमण किया करते हैं, उसके हृदयमें वही कल्पना जागरित होने लगी ! मन-ही-मन वह देखने लगी, शुभ्र शरीर, शुभ्रवेश, शुभ्रश्मश्रु, शुभ्रवसन, महामति महामुनि वीणा लिये हुए चांदनीके चमकते आकाशकी राहमें गाते आ रहे हैं—

"हरे मुरारे मधुकैटभारे !"

क्रमशः गीत निकटवर्त्ती होने लगा; और भी स्पष्ट सुनाई पड़ने लगा—

"हरे मुरारे मधुकैटभारे !"

क्रमशः और भी निकट और भी स्पष्ट :—

"हरे मुरारे मधुकैटभारे !"

अन्तमें कल्याणी के मस्तकपर बनस्थली में प्रतिध्वनित होता हुआ गीत होने लगा—

"हरे मुरारे मधुकैटभारे !"

कल्याणीने अपनी आंखें खोलीं। अर्धस्फुट वनान्धकार-विमिश्रित चन्द्ररश्मिमें उसने देखा, सामने वह शुभ्रशरीर, शुभ्र-वेश, शुभ्रश्मश्रु, शुभ्रवसन ऋषिमूर्ति खड़ी है। विकृत मस्तिष्क भूतचेतन अवस्था में कल्याणीने मनमें सोचा, प्रणाम करूँ, लेकिन शिर नत करने से पहले वह फिर अचेत हो गयी, गिर पड़ी।

———

पाँचवां परिच्छेद

इसी बनमें एक बहुत बड़ी भूमि पर ठोस पत्थरों से निर्मित एक बहुत बड़ा मठ है। पुरातत्ववेत्ता उसे देखकर कह सकते हैं; कि पूर्वकालमें यह बौद्धोंका विहार था—इसके बाद हिन्दुओंका मठ हो गया है। दो खण्डोंमें अट्टालिका-श्रेणी है; उसमें अनेक देवमन्दिर और सामने नाट्य-मन्दिर है। वह समूचा मठ चहारदीवारी से घिरा हुआ है और बाहरी हिस्सा ऊँचे-ऊँचे सघन वृक्षोंसे इस तरह आच्छादित है, कि दिनमें समीप जाकर भी कोई यह नहीं जान सकता कि यहां इतना बड़ा मठ है। यों तो प्राचीन होने के कारण मठ-आकार अनेक स्थानों से नग्न हो गया है; लेकिन दिनमें देखने से साफ पता लगेगा कि अभी हालही में वह बनाया गया है। देखने से तो यही जान पड़ेगा कि इस दुर्भेद्य बनके अन्दर कोई मनुष्य रहता न होगा। उस अट्टालिकाकी एक कोठरीमें बहुत बड़ा कुन्दा जल रहा था, आँख खुलने पर कल्याणीने देखा कि सामने ही वह ऋषिमहात्मा हैं। कल्याणी बड़े आश्चर्यसे चारों तरफ देखने लगी, अभी भी स्मृति पूरी तरह जागी न थी। यह देखकर महापुरुषने कहा,—मां! देवताओंकी यह जगह है, डरना नहीं। थोड़ा दूध है, उसे पियो; फिर तुमसे बातें होंगी।"

पहले तो कल्याणी कुछ समझ न सकी, लेकिन धीरे-धीरे उसके हृदयमें जब धीरज हुआ, तो उसने उठकर अपने गलेमें आंचल डालकर, जमीनसे मस्तक लगाकर प्रणाम किया। महात्माजीने सुमंगल आशीर्वाद देकर दूसरे कमरे से सुगन्धित एक मिट्टीका बरतन लाकर उसमें दूध गर्म किया। दूधके गर्म हो जाने पर उसे कल्याणी को देकर बोले,—"बेटा! दूध कन्याको

भी पिलाओ, स्वयं भी पियो, उसके बाद बातें करना।" कल्याणी सन्तुष्ट हृदय कन्याको दूध पिलाने लगी। इसके बाद उन महात्माने कहा,—"मैं जबतक न आऊँ, कोई चिन्ता न करना।" यह कहकर कमरे के बाहर चले गये। कुछ देर बाद उन्होंने लौटकर देखा कि कल्याणीने कन्याको दूध तो पिला दिया है, लेकिन स्वयं कुछ नहीं पिया- जो दूध रक्खा हुआ था, उसमें से बहुत थोड़ा खर्च हुआ था। इसपर महात्माने कहा,— "बेटी! तुमने दूध नहीं पिया, मैं फिर बाहर जाता हूं, जबतक तुम दूध न पियोगी, मैं वापस न आऊँगा।"

वह ऋषितुल्य महात्मा यह कहकर बाहर जा रहे थे, इसी समय कल्याणी फिर प्रणामकर हाथ जोड़,—खड़ी हो गयी।

बनवासी ने पूछा,—"क्या कहना चाहती हो?"

कल्याणी ने हाथ जोड़े हुए कहा,—"मुझे दूध पीने की आज्ञा न दें। उसमें एक बाधा है। मैं पी न सकूंगी।"

इसपर बनवासी ने दुःखी हृदय से कहा,—"क्या बाधा है, मुझे बताओ। मैं बनवासी ब्रह्मचारी हूं, तुम मेरी कन्याके समान हो, ऐसी कौन बात हो सकती है, जो मुझसे कह न सको? मैं जब तुम्हें बनसे उठाकर यहां ले आया, तो तुम अत्यन्त भूख-प्याससे अवसन्न थी, तुम यदि न पियोगी तो कैसे बचोगी?"

इसपर कल्याणी ने भरी आँखें और भरे गले से कहा,— "आप देवता हैं। आपसे अवश्य निवेदन करूँगी—अभीतक मेरे स्वामीने कुछ भी नहीं खाया है, उनसे मुलाकात बिना हुए, या भोजन संवाद बिना मिले, मैं भोजन कर न सकूँगी। कैसे मैं खाऊँगी।"

ब्रह्मचारी ने पूछा,—"तुम्हारे पतिदेव कहाँ हैं ?"

कल्याणी बोली.—"यह मुझे मालूम नहीं—उनके दूधकी खोजमें बाहर निकलने पर डाकू मुझे उठा ले गये।" इसपर ब्रह्मचारीने एक एक बात पूछकर कल्याणी से उनके पतिका सारा हाल मालूम कर लिया। कल्याणी ने पतिका नाम न बताया, बता भी नहीं सकती थी, किन्तु अन्यान्य परिचयों से ब्रह्मचारी समझ गये। उन्होंने पूछा,—"तुम्हीं महेन्द्रकी पत्नी हो ?" इसका कोई उत्तर न देकर कल्याणी शिर नतकर जलती हुई आगमें लकड़ी लगाने लगी। ब्रह्मचारी ने समझकर कहा,—"तुम मेरी बात मानो, मैं तुम्हारे पतिकी खोज कराता हूं। लेकिन जबतक तुम दूध न पिओगी, मैं न जाऊंगा।"

कल्याणी ने पूछा,—"यहां थोड़ा जल मिल सकेगा ?"

ब्रह्मचारी ने जलका कलश दिखा दिया। कल्याणी ने अंजलि रोपी ब्रह्मचारीने जल डाल दिया। कल्याणीने उस जलकी अंजलिको महात्माके चरणोंके पास ले जाकर कहा,—"इसमें कृपाकर पदरेणु दे दें।" महात्माके अंगूठे द्वारा जल छू देने पर कल्याणी ने उसे पीकर कहा,—"मैंने अमृतपान किया है। और कुछ खाने-पीनेको न कहिये, जबतक पतिदेव का पता न लगेगा, मैं न खाऊँगी।" इसपर ब्रह्मचारी ने सन्तुष्ट होकर कहा,—"तुम इसी देवस्थान में रहो, मैं तुम्हारे पतिकी खोज में जाता हूं।"

छठां परिच्छेद

रात काफी बीत चुकी है। चन्द्रमा माथेके ऊपर हैं। पूर्ण चन्द्र नही हैं, इसलिए चांदनी भी चटकीली नहीं, फीकी है। जंगलके बहुत बड़े हिस्सेपर अन्धकार में छायाविशिष्ट रोशनी पड़ रही है। उस प्रकाश में मठके इस पारसे दूसरा किनारा दिखाई नहीं पड़ता। मठ जैसे अनन्त जनशून्य है, देखने से यह मालूम होता है। इसी मठके समीप से मुर्शिदाबाद और कलकत्ते को राह जाती है। राह के किनारे ही एक छोटी पहाड़ी है। पहाड़ी पर आमके अनेक पेड़ हैं। वृक्षोंकी चोटी चांदनी से चमकती हुई कांप रही है, वृक्षोंके नीचे पत्थरपर पड़नेवाली छाया भी कांप रही है। ब्रह्मचारी उसी पहाड़ी के शिखरपर चढ़कर न जाने क्या सुनने लगे, नहीं कहा जा सकता कि क्या सुन रहे थे। उस अनन्त जंगलमें पूर्ण शान्ति थी—कहीं ऐसे ही पत्तोंका मर्मर-ध्वनि सुनाई पड़ जाती है। पहाड़ के मूल स्थानमें नीचे एक जगह भयानक जंगल है। ऊपर पहाड़ नीचे जंगल, बीचमें वह राह है। नहीं कह सकते कि उधर कैसा शब्द हुआ, जिसे सुनकर ब्रह्मचारी उधर ही जंगलमें लपके। उन्होंने भयानक जंगलमें प्रवेशकर देखा कि वहां एक घने स्थानमें वृक्षोंकी छायामें बहुतेरे आदमी बैठे हैं। वह सब मनुष्य लम्बे, काले और सशस्त्र थे, पेड़ोंकी छायाके अन्दर भेद कर आनेवाली चांदनी उनके शस्त्रोंको चमका रही है। ऐसे ही दो सौ आदमी बैठे हैं और सब शान्त-चुप हैं। ब्रह्मचारी उनके बीचमें जाकर खड़े हो गये और उन्होंने कुछ इशारा कर दिया, जिससे कोई भी उठकर खड़ा न हुआ। इसके बाद वह तपस्वी महात्मा एक तरफ से लोगोंका चेहरा गौरसे देखते हुए आगे बढ़ने लगे,

जैसे किसीको खोजते हों। खोजते-खोजते अन्तमें वह पुरुष मिला और ब्रह्मचारीके उसका अंग स्पर्शकर इशारा करते ही वह उठ खड़ा हुआ। ब्रह्मचारी उसे साथ लेकर दूर आड़में चले गये—वह पुरुष युवक बलिष्ट था—लम्बे घुंघराले बाल कन्धोंपर लहरा रहे थे। पुरुष अतीव सुन्दर था। गौरिक वस्त्र परिधान-कारी तथा चन्दनचर्चित अंगवाले ब्रह्मचारी ने उस पुरुष से कहा,—"भवानन्द! महेन्द्रसिंह की कुछ खबर मिली है?"

इसपर भवानन्द ने कहा,—"आज सबेरे महेन्द्रसिंह अपनी स्त्री और कन्या के साथ गृह त्यागकर बाहर निकले हैं—बसती में—"

इतना कहते ही ब्रह्मचारी ने बात काटकर कहा,—"बसती में जो घटना हुई है, जानता हूं। किसने ऐसा किया?"

भवानन्द—गांवके ही किसान लोग थे। इस समय तो गावों के किसान पेटकी ज्वालासे डाकू हो गये हैं। आजकल कौन डाकू नहीं है? हमलोगों ने भी आज लूट की है--दारोगा साहबके लिये दो मन चावल जा रहा था, छीनकर वैष्णवों को भोग लगा दिया है।"

ब्रह्मचारी ने कहा,—"चारोंके हाथसे तो हमने स्त्री कन्या का उद्धार किया है। इस समय उन्हें मठमें बैठा आया हूं। अब यह भार तुम्हारे ऊपर है कि महेन्द्रको खोजकर स्त्री-कन्या उनके हवाले कर दो। यहां जीवानन्द के रहने से काम हो जायेगा।"

भवानन्दने स्वीकार कर लिया। तब ब्रह्मचारी दूसरी जगह चले गये।

सातवां परिच्छेद

बसती में बैठे रहने और सोचते रहने का कोई प्रतिफल न होगा, यह सोचकर महेन्द्र वहां से उठे। नगर में जाकर राज-पुरुषोंकी सहायता से स्त्री-कन्याका पता लगावायेंगे, यह सोचकर महेन्द्र उसी तरफ चले। कुछ दूर जाकर राहमें उन्होंने देखा कि कितनी ही बैलगाड़ियों को घेरकर बहुतेरे सिपाही चले आ रहे हैं।

१९७३ में बंगाल प्रदेश अंगरेजों के शासनाधीन हुआ नहीं था। अंगरेज उस समय बंगाल के दीवान थे। वे खजाने का रुपया अदा करा लेते थे, लेकिन तवतक बंगालियों की रक्षाका भार उन्होंने अपने ऊपर लिया न था। उस समय रुपया की आमदनी का भार अंग्रेजों पर था, और कुल सम्पत्ति का रक्षाका भार पापिष्ठ, नराधम, विश्वासघातक, मनुष्य कुलकलङ्क मीर-जाफर पर था। मीरजाफर आत्मरक्षा के ही अक्षम था, तो बंगाल प्रदेशकी रक्षा कैसे कर सकता था? मीरजाफर अफीम पीता था और सोता था। अंगरेज ही सारा कार्य अपने जिम्मे का करते थे। बंगाली रोते थे और कंगाल हुए जाते थे।

अतः बंगालका कर अंगरेजोंको प्राप्य था। लेकिन शाशन का भार नवाब पर था। जहां-जहां अंगरेज अपना प्राप्य कर स्वयं अदायगी कराते थे, वहां-वहां उन्होंने अपनी तरफ से कलेक्टर नियुक्त कर दिये थे। लेकिन मालगुजारी प्राप्त होने पर कलकत्ते जाती थी। जनता भूखसे चाहे मर जाये, लेकिन मालगुजारी देनी ही पड़ती थी। फिर भी मालगुजारी पूरी तरह वसूल नहीं हुई थी, कारण, माता वसुमतीके विना घन-प्रसव किये, जनता अपने पाससे कैसे गढ़कर दे सकती थी?

जो हो, जो कुछ प्राप्त हुआ था, उसे गाड़ियों पर लादकर सिपाहियों के पहरे में कलकत्ते भेजा जा रहा था। वह कम्पनी के खजाने में जमा होता। आजकल डाकुओंका उत्पात बहुत बढ़ गया है, इसीलिये पचास सशस्त्र सिपाही गाड़ीके आगे-पीछे संगीन खड़ी किये कतार में चल रहे हैं। उनका अध्यक्ष एक गोरा है। गोरा सब से पीछे घोड़े पर था? गरमी की भयानकता के कारण सिपाही दिनको न चलकर रातको सफर करते थे। चलते चलते उन गाड़ियों और सिपाहियों के कारण महेन्द्रको राह रुक गयी। इस तरह राह रुकी होनेके कारण थोड़ी देरके लिये महेन्द्र सड़क के किनारे खड़े हो गये। फिर भी, सिपाहियों के शरीर से धक्का लग सकता था और झगड़ा बचाने के ख्याल से महेन्द्र और पीछे हटकर जंगल के किनारे खड़े हो गये।

इसी समय एक सिपाही बोला,—"यही एक डाकू भागता है।" महेन्द्रके हाथमें बन्दूक देखकर उसका विश्वास दृढ़ हो गया। वह दौड़कर पहुंचा और एकाएक महेन्द्रका गला पकड़ कर "साले चोर" कहकर उन्हें एक घूंसा जमाया और बन्दूक छीन ली। खाली हाथ महेन्द्रने केवल घूंसेका जवाब घूंसे से दिया। महेन्द्रको इस वर्तावपर क्रोध आ गया था, यह कहना ही व्यर्थ है। घूसा खाकर सिपाही चक्कर खाकर गिर पड़ा और बेहोश हो गया। इसपर अन्य चार सिपाहियों ने आकर महेन्द्र को पकड़ लिया और उन्हें उस गोरे सेनापति के पास ले गये। अभियोग लगाया कि इसने एक सिपाहिका खून किया है। गोरा साहब पाइप से तमाखू पी रहा था, नशेके झोंके में बोला,—"साले को पकड़कर शादी करलो।" सिपाही हक्का-बक्का हो रहे, कि बन्दूकधारी डाकू से सिपाही कैसे शादी कर

ले ? लेकिन नशा उतरने पर साहब का मत बदल सकता है कि शादी कैसे होगी, यही विचार कर सिपाहियों ने एक रस्सी लेकर महेन्द्रका हाथ-पैर बांध दिया और गाड़ी पर डाल दिया। महेन्द्रने सोचा कि इतने सिपाहियों के रहते जोर करना व्यर्थ है, इसका सुफल न होगा, दूसरे स्त्री-कन्याके गायब होने के कारण महेन्द्र बहुत दुःखी और निराश थे, सोचा, अच्छा है—मर जाना ही अच्छा है। सिपाहियों ने उन्हें गाड़ीके बल्ले से अच्छी तरह बांध दिया और इसके बाद धीर गम्भीर पदक्षेप से वह लोग फिर पहले की तरह चलने लगे।

———

आठवां परिच्छेद

ब्रह्मचारी की आज्ञा पाकर भवानन्द धीरे-धीरे हरिकीर्त्तन करते हुए उस बसती की तरफ चले जहां महेन्द्रका कन्या-पत्नीसे वियोग हुआ था। उन्होंने विवेचन किया कि महेन्द्रका पता वहीं से लगना सम्भव है।

उस समय अंग्रेजों की बनवाई हुई आधुनिक राहें न थीं। किसी भी नगर से कलकत्ते जानेके लिये मुगल-सम्राटों की बनवाई राह से ही जाना पड़ता था। महेन्द्र भी पदचिह्नसे नगर जानेके लिये दक्षिण से उत्तर जा रहे थे। भवानन्द ताल पहाड़ से जिस बसती की तरफ आगे बढ़े, वह भी दक्षिण से उत्तर पड़ती थी। जाते-जाते उनका भी उन धन रक्षक सिपाहियोंसे साक्षात हो गया। भवानन्द भी सिपाहियों की बगल से निकले। एक तो सिपाहियों का विश्वास था कि इस खजाने

को लूटने के लिये डाकू अवश्य कोशिश करेंगे, उसपर राहमें एक डाकू—महेन्द्र को गिरफ्तार कर चुके थे, अतः भवानन्द को भी राहमें पाकर उनका विश्वास हो गया कि यह भी एक डाकू ही है। अतएव तुरत उन सबने भवानन्द को भी पकड़ लिया।

भवानन्द ने मुस्कुराकर कहा,—"क्यों भाई ?"

सिपाही बोला,—"तुम साले डाकू हो।

भवानन्द—देख तो रहे हो, गेरुआ कपड़ा पहने हुआ मैं ब्रह्मचारी हूं ; डाकू क्या मेरे जैसे होते हैं ?

सिपाही—बहुतेरे साले ब्रह्मचारी संन्यासी डकैती करते हैं।

यह कहते हुए सिपाही भवानन्द के गलेपर धक्का दे खींच लाये। अन्धकार में भवानन्द की आंखों से आग निकलने लगी। लेकिन उन्होंने और कुछ न कर विनीत भाव से कहा,—"प्रभु ! आज्ञा करो, क्या करना होगा ?"

भवानन्द की विनयवाणी से सन्तुष्ट होकर सिपाही ने कहा,—"लो साले ! माथे पर एक बोझ लाद कर चलो।" यह कहकर सिपाही ने भवानन्द के माथे पर एक गठरी लाद दी। यह देख एक दूसरा सिपाही बोला,—"नहीं, नहीं, भाग जायेगा। इस सालेको भी वही पहले सालेकी तरह बांधकर गाड़ी पर बंठा दो।" इसपर भवानन्द को और उत्कण्ठा हुई कि पहले किसे बांधा है, देखना चाहिये। यह विचारकर भवानन्द ने गठरी फेंक दी और पहले सिपाही ने एक थप्पड़ जमाया। अतः अब सिपाहियों ने उन्हें भी बांधकर गाड़ी पर महेन्द्रकी बगल में डाल दिया। भवानन्द पहचान गये कि यही महेन्द्र सिंह हैं।

सिपाही फिर निश्चिन्त हो कोलाहल मचाते हुए आगे बढ़े। गाड़ीका पहिया घड़-घड़ शब्द करता हुआ घूमने लगा। अब भवानन्द ने अतीव धीमे स्वरमें, ताकि महेन्द्र ही सुन सके,

कहा,—"महेन्द्रसिंह ! मैं तुम्हें पहचानता हूं। तुम्हारी सहायता करने के लिये ही यहाँ आया हूं। मैं कौन हूं, यह अभी तुम्हारे सुनने की जरूरत नहीं। मैं जो कहता हूं, सावधान होकर वही करो। तुम अपने हाथके बंधन गाड़ी के पहिया के ऊपर रखो।"

महेन्द्र विस्मित हुए। फिर भी, उन्होंने विना कहे-सुने भवानन्द के मतानुसार कार्य किया। अन्धकार में गाड़ी के चक्कों की तरफ जरा खिसककर उन्होंने अपने हाथके बन्धनों को पहिये के ऊपर लगाया। थोड़ी ही देरमें उनके हाथके बन्धन कटकर खुल गये। इसके बाद इसी तरह उन्होंने पैरके बन्धन भी काटे। इस तरह बन्धन से मुक्त होकर वह चुपचाप गाड़ीपर लेटे रहे। भवानन्द ने भी इसी तरह अपने को बन्धन से मुक्त किया। दोनों ही निस्तब्ध रहे।

जिस जगह जंगल के समीप राजपथ पर खड़े होकर ब्रह्मचारी ने चारों ओर देखा था, उसी राहमें इन लोगों को गुजरना था। उस पहाड़ी के निकट पहुंचने पर सिपाहियों ने देखा, कि एक शिलाखण्ड पर जंगल के किनारे एक पुरुष खड़ा है। हलकी चाँदनी में उस पुरुष का काला शरीर चमकता हुआ देखकर सिपाही बोला,—"देखो, एक साला यहाँ और खड़ा है।" इसपर उसे पकड़ने के लिये एक आदमनी दौड़ा लेकिन वह आदमी वहीं खड़ा रहा, भागा नहीं। पकड़ कर हवलदार के पास ले आने पर भी वह व्यक्ति कुछ न बोला। हवलदार ने कहा,—"इस साले के सिर पर गठरी लादो।" सिपाहियों के एक भारी गठरी देनेपर उसने भी माथेपर ले ली। तब हवलदार पीछे पलटकर गाड़ीके साथ चला। इसी समय एकाएक पिस्तौल चलने की आवाज हुई। हवलदार

माथेमें गोली खाकर गिर पड़ा। "इसी सालेने हवलदार को मारा है," कहकर एक सिपाही ने इस मोटिया का हाथ पकड़ लिया। मोटिया के हाथमें तबतक पिस्तौल थी। मोटिये ने अपने माथेका बोझ फेंककर और तुरत पलटकर उस सिपाहि के माथेपर आघात किया। सिपाही का माथा फट गया और वह जमीन पर गिर पड़ा। इसी समय "हरि! हरि! हरि!" कर दो सौ सशस्त्र जनोंने आकर सिपाहियों को घेर लिया। सिपाही गोरे साहब के आनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे। साहब भी डाका पड़ा है, विचारकर तुरत गाड़ीके पास पहुंचा और सिपाहियों को चौकोर खड़े होनेकी आज्ञा दी। अंग्रेजोंका नशा विपद्‌के समय नहीं रहता। सिपाहियों के उसी तरह खड़े होते ही दूसरी आज्ञा से उन्होंने अपनी-अपनी बन्दूकें संभालीं। इसी समय एकाएक साहब की कमरकी तलवार किसीने छीन ली। लेते ही उसने एक वारमें साहबका सिर भुट्टे की तरह उड़ा दिया। साहब छिन्नशिर घोड़े से गिरा। फायर करने का हुक्म वह दे न सका। सब लोगोंने देखा कि एक व्यक्ति गाडी पर हाथमें नग्न तलवार लिये हुए ललकार रहा है,—"मारो सिपाहियों को, मारो-मारो," साथ ही "हरि-हरि" का नाद भी करता जाता है। वह व्यक्ति और कोई नहीं भवानन्द है।

एकाएक अपने साहब को मरा हुआ देखकर अपनी रक्षाके लिये किसी को आज्ञा देते न देखकर सरकारी सिपाही उठकर निश्चेष्ट हो गये। इसी अवसर में तेजस्वी डाकुओं ने अनेक सिपाहियों को हताहतकर आगे बढ़ गाड़ीपर रखे हुए खजाने पर अधिकार जमा लिया। सरकारी फौजी टुकड़ी भयभीत होकर भागी।

अन्तमें वह व्यक्ति सामने आया, जो दलका नेतृत्व करता

था और पहाड़ी पर खड़ा था? उसने आकर भवानन्द को गले लगा लिया। भवानन्द ने कहा,—"भाई, जीवानन्द! सार्थक व्रत ग्रहण किया है, तुमने!"

जीवानन्द ने कहा,—"भवानन्द! तुम्हारा नाम सार्थक हो।" इसके बाद अपहृत धनको यथा स्थान भेजने का भार जीवानन्द पर रहा। वह अपने अनुचरों के साथ खजाना लेकर शीघ्र ही स्थानान्तर में चले गये। भवानन्द अकेले खड़े रह गये।

नवां परिच्छेद

बैलगाड़ी पर से कूद कर एक सिपाही का अस्त्र छीनकर महेन्द्रसिह ने भी चाहा कि युद्धमें योग दें: लेकिन इसी समय उन्हें प्रत्यक्ष दिखाई दिया कि युद्धमें लगा हुआ दल और कुछ नहीं, डाकुओंका दल है। धन छीनने के लिये इन लोगो'ने सिपाहियों पर आक्रमण किया है। यह विचार कर महेन्द्र युद्ध से विरत दूर जा खड़े हुए। कारण, उन्होंने सोचा कि डाकुओ का साथ देने से उन्हें भी दुराचार का भागी बनना पड़ेगा। वे तलवार फेंककर धीरे-धीरे वह स्थान त्यागकर जा रहे थे, इसी समय भवानन्द उनके पास आकर खड़े हो गये। महेन्द्र ने पूछा,—"महाशय! आप कौन हैं?"

भवानन्द ने कहा,—"इससे तुम्हे क्या प्रयोजन है?"

महेन्द्र—मेरा कुछ प्रयोजन है। आज आपके द्वारा विशेष उपकृत हुआ हूं।

भवानन्द—मुझे ऐसा ख्याल नहीं था, कि तुम्हें इतना ज्ञान

है। हाथों में अस्त्र रहते हुए युद्धसे विरत रहे? जमीदार के लड़के घी-दूधका श्राद्ध करना जानते हैं, लेकिन कामके समय हनुमान बन जाते हैं।

भवानन्द की बात समाप्त होते न होते महेन्द्रने घृणाके साथ कहा,—"यह तो दुष्कार्य है, डकैती है!"

भवानन्द ने कहा,—"हो डकैती, हमलोगों द्वारा तुम्हारा कुछ उपकार हुआ था, साथ ही और भी कुछ उपकार कर देनेकी इच्छा है।"

महेन्द्र—तुमने मेरा कुछ उपकार अवश्य किया है; लेकिन और क्या उपकार करोगे? फिर डाकुओं द्वारा उपकृत होनेके बदले अनुपकृत होना ही अच्छा है।

भवानन्द—उपकार ग्रहण न करो, यह तुम्हारी इच्छा है। यदि इच्छा हो, तो मेरे साथ आओ, तुम्हें तुम्हारी स्त्री-कन्यासे मुलाकात करा दूंगा।

महेन्द्र—पलटकर खड़े हो गये। बोले,—"यह क्या?"

भवानन्द ने इसका कोई जवाब न देकर पैर बढ़ाया। अन्तमें महेन्द्र भी साथ-साथ आने लगे। साथ ही मन-ही-मन सोचते जाते थे, यह सब कैसे डाकू हैं?"

दशवां परिच्छेद

उस ज्योत्सनामयी रजनी में दोनों ही जंगल पार करते हुए चले जा रहे थे। महेन्द्र चुप, शान्त, गर्वित और कुछ कौतूहली भी थे।

सहसा भवानन्द ने भिन्न मूर्त्ति धारण कर ली। वह अब स्थिर मूर्त्ति धीर प्रवृति संन्यासी न रहे; वह रणनिपुण वीर-मूर्ति; सन्याध्यक्ष की मुण्डघाती मूर्ति अब न रही। अभी जिस गर्वित भावसे वह महेन्द्रका तिरस्कार कर रहे थे, अब भवानन्द वह न थे। मानो ज्योत्सनामयी, शान्तिशालिनी, पृथिवी के तरु-कानन नदनदीमय शोभा निरख कर उनके चित्तमें बिशेष परिवर्तन हो गया हो। समुद्र मानो चन्द्रोदय होने पर हंस उठा। भवानन्द हंसमुख, वाङ्मय, प्रियसंभाषी बन गये। बातचीत के लिये अतीव व्यग्र हो उठे। भवानन्द ने बातचीत करने के अनेक उपाय रचे, लेकिन महेन्द्र चुप ही रहे। तब निरुपाय होकर भवानन्द ने गाना शुरू किया—

"वन्दे मातरम्।
सुजलां सुफलां मलयजशीतलाम्
शस्यश्यामलां मातरम्।"

महेन्द्र गाना सुनकर कुछ आश्चर्य में आये। कुछ समझ वह न सके। सुजला, सुफला, मलयजशीतला, शस्यश्यामला माता कौन है? उन्होंने पूछा,—"माता कौन है?" कोई उत्तर न देकर भवानन्द गाने लगे—

"शुभ्रज्योत्स्नां पुलकित यमिनीम्
फुल्लकुसुमति-द्रुमदल शोभिनीम्
सुहासिनीं सुमधुरभाषिणीम्
सुखदां वरदां मातरम्॥"

महेन्द्र बोले,—"यह तो देश है; यह तो मां नहीं है।"

भवानन्द ने कहा,—"हमलोग दूसरी मां को नहीं मानते जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी। हमारी माता है, जन्मभूमि ही जननी है; हमारे न मां है, न पिता है न भाई

है, कुछ नहीं है, स्त्री नहीं, घर नहीं, मकान नहीं, हमारी अगर कोई है, तो वही सुजला, सुफला, मलयजशमीरण,–शीतला, शस्यश्यामला —

अब महेन्द्रने समझकर कहा,—"तो फिर गाओ।"

भवानन्द फिर गाने लगे—

"वन्दे मातरम्।
सुजलां सुफलां मलयजशीतलाम्
शस्यश्यामलां मातरम्।
शुभ्र ज्योत्स्नां-पुलकित यामिनीम्,
फुल्लकुसुमित-द्रुमदलशोभिनीम्,
सुहासिनी सुमधुरभाषिनीम्,
सुखदां, वरदां मातरम्॥
सप्तकोटिकण्ठ-कलकल निनादकराले,
द्विसप्तकोटि भुजैर्धृ तखरकरवाले,
अबला केता माँ! एतो बले!
बहुबलधारिणीम् नमामि तारिणीम्,
रिपुदलवारिणीम् मातरम्॥
तुमी विद्या, तुमी धर्म,
तुमी हरि तुमी मर्म,
त्वं हि प्राणाः शरीरे।
बाहुते तुमी माँ शक्ति,
हृदये तुमी माँ भक्ति,
तोमारई प्रतिमा गढ़ी मन्दिरे मन्दिरे।
त्वं हि दुर्गा दशप्रहरधारिणीम्,
कमळा कमल दल विहारीणी
वाणी विद्यादायिनी नमामि त्वां,

नमामि कमलां अमलां अतुलाम्,
सुजलां सुफलां मातरम्
वन्दे मातरम्
श्यामलां सरलां सुस्मितां भूषिताम
धरणीं भरणीं मातरम् ॥"

महेन्द्रने देखा, दस्यु गाते-गाते रोने लगा। तब महेन्द्रने विस्मय से पूछा,—"तुम लोग कौन हो ?"

भवानन्द ने उत्तर दिया,—"हमलोग सन्तान हैं।"

महेन्द्र—सन्तान क्या ? किसके सन्तान ?

भवानन्द—माताकी सन्तान।

महेन्द्र—ठीक ; तो क्या सन्तान लोग चोरी डकैती करके मांकी पूजा करते हैं ? यह कैसी मातृ भक्ति ?"

भवानन्द हमलोग चोरी डकैती नहीं करते।

महेन्द्र—अभी तो गाड़ी लूटी है।

भवानन्द—यह क्या चोरी डकैती है ? किसके रुपये लूटे हैं ?

महेन्द्र—क्यों ? राजा के।

भवानन्द—राजा के ? वह जो इन रुपयों को लेगा, इन रुपयों पर उसका क्या अधिकार है ?

महेन्द्र—राजाका राज भाग।

भवानन्द जो राजा राज्यचालन करे, जनता-जनार्दन की सेवा न करे, वह राजा कैसे हुआ ?

महेन्द्र—देखता हूं, तुम लोग किसी दिन फौजकी तोपके मुंह पर उड़ जाओगे।

भवानन्द—अनेक साले सिपाहियों को देख चुका हूं, अभी आज भी तो देखा है।

महेन्द्र—अच्छी तरह नहीं देखा, एक दिन देखोगे।

भवानन्द—सब देख चुका हूं, एक बारसे दो बार तो मनुष्य मर नहीं सकता!

महेन्द्र—जान-बूझकर मरने की क्या जरूरत है?

भवानन्द—महेन्द्र सिंह! मेरा ख्याल था कि तुम मनुष्यों के समान मनुष्य होगे; लेकिन देखा, जैसे सब हैं वसे तुम भी हो, दूध-दूधके दम हो। देखो, सांप मिट्टी में अपने पेटको घसीटता हुआ चलता है, उससे बढ़कर तो शायद नीच कोई न होगा; लेकिन उसके शरीर पर भी पैर रख देने से फन निकाल लेता है। तुमलोगों का धैर्य क्या किसी तरह भी नष्ट नहीं होता? देखो, कितने देशी शहर हैं, मगध, मिथिला, काशी, कांची, दिल्ली, काश्मीर, उस देशकी ऐसी दुर्दशा है? जिस देशके मनुष्य भोजनके अभाव में घास खा रहे हैं? जिस देशकी जनता कांटे खाती है, लता-पत्ता खाती है? किस देशके मनुष्य स्यार कुत्ते और मुर्दे खाते हैं? आदमी सन्दूक में धन रखकर निश्चिन्त नहीं हैं? सिंहासन पर शालग्राम बैठाकर निश्चिन्त नहीं हैं? घरमें बहू-नौकर-मजदूरनी रखकर निश्चिन्त नहीं हैं? हर देशका राजा प्रजाकी दशाका भरण-पोषण का ख्याल रखता है, हमारे देशका मुसलमान राजा क्या हमारी रक्षा कर रहा है? धर्म गया, जाति गयी, मान गया, अब तो प्राणों पर बाजी आ गयी है। इन नशेबाज दाढ़ी वालोंको बिना भगाये क्या हिन्दू-हिन्दू रह जायेंगे?

महेन्द्र—कैसे भगाओगे?

भवानन्द—मारकर।

महेन्द्र—तुम अकेले भगाओगे? एक थप्पड़ मारकर क्या?

भवानन्द ने फिर गाया—

"सप्तकोटिकण्ठ कलकल-निनादकराले,
द्विसप्तकोटिभुजैधृ त खरकरवाले,
अबला केनो माँ एतो बले।"

महेन्द्र—किन्तु देखता हूं, तुम अकेले हो।

भवानन्द—क्यों अभी तो दो सौ आदमियों को देख चुके हो।

महेन्द्र—क्या वह सब सन्तान हैं ?

भवानन्द— सब सन्तान हैं।

महेन्द्र—और कितने लोग हैं ?

भवानन्द—इसी तरह हजार-हजार है; धीरे-धीरे और बढ़ेंगे।

महेन्द्र– बहुत होगा, दस-बीस हजार हो जाओगे; लेकिन इतने से ही मुसलमान भाग जायंगे ? क्या वह राज्यच्युत होंगे ?

भवानन्द—पलासी में अंगरेजों की फौज कितनी थी ?

महेन्द्र—अङ्गरेज बंगाली बराबर हैं ?

भवानन्द—न कैसे बराबर होंगे ? शरीर में अधिक बल होने से क्या गोला ज्यादा तेज चलता है ?

महेन्द्र– तब अंग्रेज और मुसलमानों में इतना अन्तर क्यों है ?

भवानन्द--मान लो; एक अङ्गरेज प्राण जाने पर भी भागता नहीं; लेकिन एक मुसलमान पसीना होते ही भागता है, शरबत की खोज करता है। इसके बाद मान लो, अङ्गरेज जो करना चाहते हैं, करके छोड़ते हैं, उनमें लगन होती है, लेकिन मुसलमान आरामतलब होते हैं, रुपयों के लिये प्राण देते हैं, उसपर तनखाह भी तो नहीं पाते। सबसे अन्तिम बात यह है

कि वह साहसी होते हैं। एक गोला एक ही जगह जाकर गिरेगा, दस जगह नहीं, अतः एक गोलाको देखकर दस आदमियों के भागने की क्या जरूरत है ? लेकिन एक ही गोलेके छूटते मुसलमान फौजकी फौज भागती है। लेकिन सैकड़ों गोले देखकर भी एक अङ्गरेज तो नहीं भागता ?

महेन्द्र - तुम लोगों में यह सब गुण हैं ?

भवानन्द—नहीं, लेकिन गुण पेड़में फलता तो नहीं। अभ्यास से होता है।

महेन्द्र —तुमलोग क्या अभ्यास करते हो ?

भवानन्द—देखते नहीं हो, हमलोग संन्यासी हैं ? हमारा संन्यास इसी अभ्यास के लिये है। कार्योद्धार होने पर, अभ्यास पूरा होने पर हमलोग फिर गृहस्थ हो जायेंगे। हमलोगों के स्त्री-कन्या सब हैं।

महेन्द्र—तुमलोग उन सबका त्यागकर माया से परे हो सके हो ?

भवानन्द—सन्तान झूठ बोला नहीं करते। तुम्हारे सामने मिथ्या बड़ाई करना नहीं चाहते। माया से परे कौन हो सकता है ? जो कहें, कि हमने माया काट दी है, शायद उसे माया ममता कभी रही ही नहीं। या वह मिथ्यावादी हैं। हम माया से परे नहीं हुए हैं, लेकिन हमलोग व्रतकी रक्षा करते हैं। तुम सन्तान बनोगे ?

महेन्द्र—बिना स्त्री-कन्याका पता पाये, और मिले, मैं कुछ नहीं कह सकता।

भवानन्द—चलो, तुम अपनी स्त्री-कन्याको देखोगे, चलो।

दोनों शान्त—चुप राह तय करने लगे। भवानन्द ने फिर वन्देमातरम् गाना शुरू किया। महेन्द्र का गला भी सुरीला

था ; संगीत में कुछ अभ्यास और रुची भी थी। अतः वह भी साथ ही गाने लगे, उन्होंने देखा कि गाते-गाते आंखों में जल आने लगता है। तब महेन्द्र ने कहा,—"यदि स्त्री-कन्याका त्याग न करना पड़े, तो इस व्रतसे मुझे भी दीक्षित कर दो।"

भवानन्द—यह व्रत जो लेता है, उसे स्त्री-कन्याका त्याग करना पड़ता है। तुम यदि यह व्रत लेना चाहोगे, तो स्त्री-कन्यासे मुलाकात करने न पाओगे। उनकी रक्षाके लिये उपयुक्त बन्दोबस्त कर दिया जायेगा। लेकिन व्रतकी सफलता तक उनका मुखदर्शन न मिलेगा।

महेन्द्र—मैं यह व्रत ग्रहण न करूँगा।

ग्यारहवां परिच्छेद

सवेरा हो गया है। वह जनहीन कानन, अबतक अन्धकारमय, शब्दहीन था, अब आलोकमय पक्षिकलरव-मुखरित होकर आनन्दमय हो गया है। उसी आनन्दमय प्रातःकाल में आनन्दमय कानन के 'आनन्द-मठ' में सत्यानन्द स्वामी मृगचर्म पर बैठे हुए संध्या कर रहे हैं। पासमें ही जीवानन्द बैठे हैं। ऐसे ही समय महेन्द्रको साथमें लिये हुए स्वामी भवानन्द वहां उपस्थित हुए। ब्रह्मचारी चुपचाप संध्या में तल्लीन रहे, किसी को कुछ बोलने का साहस न हुआ। इसके बाद संध्या समाप्त हो जाने पर भवानन्द, जीवानन्द दोनों ने ही उठकर उनके चरणों में प्रणाम किया। पदधूलि ग्रहण करने के बाद दोनों बैठ गये। इसी समय सत्यानन्द भवानन्द को इशारे

से बाहर बुला ले गये। हम नहीं जानते कि उन लोगों में क्या बातें हुईं। इसके बाद दोनों के मन्दिर में लौट आने पर मंदमंद मुस्कुराते हुए ब्रह्मचारी ने महेन्द्र से कहा,—"बेटा! मैं तुम्हारे दुःखसे बहुत दुखी हूं। केवल उन्हीं दीनबन्धु प्रभुकी ही कृपासे कल रात तुम्हारी स्त्री और कन्याको किसी तरह बचा सका।" यह कहकर ब्रह्मचारी ने कल्याणी की रक्षाका सारा वृत्तान्त सुना दिया। इसके बाद उन्होंने कहा,—"चलो, वह लोग जहां हैं, वहीं तुम्हें भी ले चलें।"

यह कहकर ब्रह्मचारी आगे-आगे और महेन्द्र उनके पीछे देवालयके अन्दर घुसे। प्रवेश कर महेन्द्रने देखा बड़ा ही प्रशस्त और ऊँचा कमरा है। इस सदयः अरुणादयकाल में जिस समय बाहर का जंगल सूर्यालोक में हीरकखचित वह चमक रहा है, हस समय भी इस कमरे में प्रायः अन्धकार है। घरके अन्दर क्या है, पहले तो महेन्द्र यह देख न सके, किन्तु कुछ देर बाद देखते-देखते उन्हें दिखाई दिया कि एक प्रकाण्ड चतुर्भुज मूर्त्ति है, शंखचक्रगदापद्मधारी, कौस्तुभशोभित हृदय, सामने घूमने की दशामें सुदर्शनचक्र स्थापित है। मधुकैटभजैसी दो प्रकाण्ड छिन्नमस्तक मूर्त्ति रुधिरप्लावितव्रत चित्रित सामने पड़ी हैं। बाएं, लक्ष्मी आलुलाछित कुन्तला शतदलमालामण्डिता, भयत्रस्त की तरह खड़ी हैं दाहने सरस्वती पुस्तक, वाद्ययंत्र, मूर्त्तिमती रागरागिनी आदिसे घिरी हुई स्तव कर रही हैं। विष्णुके अङ्कपर एक मोहिनी मूर्त्ति—लक्ष्मी और सरस्वती से अधिक सुन्दरी, उनसे भी अधिक ऐश्वर्यान्वित अंकित हैं। गन्धर्व, किन्नर, देव, यक्ष, राक्षस उनकी पूजा कर रहे हैं। ब्रह्मचारी ने अतीव गंभीर, अतीव भीतस्वर में महेन्द्र से पूछा,—"सब कुछ देख रहे हो?" महेन्द्र ने उत्तर दिया,—"देख रहा हूं।"

ब्रह्मचारी—विष्णुकी गोद में कौन हैं, देखते हो ?

महेन्द्र—देखा, कौन हैं वह ?

ब्रह्मचारी—मां !

महेन्द्र—मां कौन ?

ब्रह्मचारी ने उत्तर दिया,—"हम जिनकी सन्तान हैं।"

महेन्द्र—कौन है वह ?

ब्रह्मचारी-समय पर पहचान जाओगे। बोलो, बन्देमा तरम्। अब चलो, देखोगे चलो।

अब ब्रह्मचारी महेन्द्रको एक दूसरे कमरे में ले गये। वहाँ जाकर महेन्द्र ने देखा, एक अपरूप सर्वाङ्ग सम्पन्न, सर्वाभरण भूषिता जगद्धात्रीमूर्त्ति विराजमान है। महेन्द्र ने पूछा,—"यह कौन हैं ?

ब्रह्मचारी—मां-जो वहां थीं।

महेन्द्र—यह कौन हैं ?

ब्रह्मचारी—इन्होंने यह कुंजर-केशरी आदि बन्य पशुओं को पैरोंसे रौंदकर, बन्य पशुओंके आवासस्थान पर अपना पद्मासन स्थापित किया है। सर्वालङ्कार परिभूषिता हास्यमयी सुन्दरी थीं। यह बालसूर्यप्रभा आदि ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री हैं। इन्हें प्रणाम करो।

महेन्द्रके भक्ति भावसे जगद्धात्रीरूपिणी मातृभूमिको प्रणाम करने के बाद ब्रह्मचारी ने उन्हें एक अन्धेरी सुरंग दिखाकर कहा,—"इस राह से आओ।" ब्रह्मचारी स्वयं आगे-आगे चले। महेन्द्र भयभीत चित्तसे पीछे-पीछे चल रहे थे। भूगर्भकी अन्धेरी कोठरी में न जाने कहां से हलका उजेला आ रहा था। उस क्षीण आलोक में उन्हें एक कालीमूर्त्ति दिखाई दी।

ब्रह्मचारी ने कहा,—"देखो, अब मां जो हो गयी हैं।"

महेन्द्रने सभय कहा,—"काली।"

ब्रह्मचारी=काली—अन्धकार समाच्छन्ना कालिमामयी, हृतसर्वस्व हैं, इसीलिये नग्न हैं। आज देश चारो तरफ श्मशान हो रहा है, इसीलिये मां कंकालमालिनी हैं। अपने शिवको अपने ही पैरोंतले रौंद रही हैं। हाय मां!

ब्रह्मचारी की आखों से आंसूकी धारा बहने लगी। महेन्द्रने पूछा,—"हाथमें खड़ग खप्पर क्यों है?

ब्रह्मचारी—हमलोग सन्तान हैं; मांके हाथोंमें अभी अस्त्र-मात्र दिया है; बोला—बन्देमातरम्!

'बन्देमातरम्' कहकर महेन्द्रने कालीको प्रणाम किया। अब ब्रह्मचारी ने कहा,—"इस राहसे आओ।" यह कहकर वह दूसरी सुरंग में चले। सहसा उनलोगों के सामने प्रातःसूर्यकी रश्मिराशि प्रभासित हुई। चारो तरफ से मधुरकण्ठ से पंक्षी कूज उठे। देखा, एक मर्मरप्रस्तरनिर्मित प्रशस्त मन्दिर के बीच सुवर्णनिर्मित दशभुजा प्रतिमा नव-अरुण-किरणों से ज्योतिर्मयी होकर हंस रही हैं। ब्रह्मचारी ने प्रणाम कर कहा,—"यह हैं मां, जो भविष्यत् में उनका रूप होगा। दशभुज दशो दिशाओं में प्रसारित हैं, उसमें नाना आयुधरूप में नाना शक्ति शोभित हैं। पैरोंके नीचे शत्रु निमर्दित हैं; पदाश्रित वीर केशरी भी शत्रु-निपीड़न में मग्न है। दिग्भुजा—"कहते-कहते सत्यानन्द गद्गद्कण्ठ हो रोने लगे।" दिग्भुजा—नाना प्रहरणधारिणी, शत्रु-विमर्दिनी, वीरेन्द्रपृष्ठविहारिणी, दाहने लक्ष्मी भाग्यरूपिणी-बाएं वाणी विद्याविज्ञानदायिनी—साथमें शक्तिके आधार कार्तिकेय, कार्यसिद्धिरूपी गणेश; आओ, हम दोनों मांको प्रनाम करें।" इसपर दोनों ही हाथ जोड़कर माता का रूप निहारते हुए बुलाने लगे—

"सर्वमंगलमांगल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तुते।"

दोनों के भक्ति भावसे प्रणाम कर चुकने के बाद भरे हुए गलेसे महेन्द्रने पूछा,—"मांकी ऐसी मूर्त्ति कब देखने को मिलेगी?"

ब्रह्मचारी ने कहा,—"जिस दिन मांकी सारी सन्तानें एक साथ मांको बुलायेंगी, उसी दिन मां प्रसन्न होंगी।"

एकाएक महेन्द्र ने पूछा,—"मेरी स्त्री कन्या कहां हैं?"

ब्रह्मचारी—चलो, देखोगे, चलो।

महेन्द्र—उनलोगों से एकबार मात्र मैं मिलूंगा। इसके बाद उन्हें बिदा कर दूंगा।

ब्रह्मचारी—क्यों विदा करोगे?

महेन्द्र—मैं यह महामन्त्र ग्रहण करूँगा।

ब्रह्मचारी—उन्हें कहां विदा करोगे?

महेन्द्रने थोड़ा विचार कर कहा,-"मेरे घरपर कोई नहीं है; मेरा दूसरा कोई स्थान भी नहीं है। इस महामारी के समय और कहां स्थान मिलेगा?"

ब्रह्मचारी—जिस राह से यहां आए हो, उसी राहसे मन्दिर के बाहर जाओ। मन्दिर के दरवाजे पर तुम्हें स्त्री-कन्या दिखाई देंगी। कल्याणी अभी तक निराहार है; जहां वह सब बैठी हैं, वहीं भोजनकी सामग्री पाओगे। उसे भोजन कराके तुम्हारी जो इच्छा हो करना। अब हमलोगों में से किसी से कुछ देर मुलाकात न होगी। यदि तुम्हारा मन उधर होगा, तो समय पर मैं तुमसे मिलूंगा।

इसके बाद ही किसी तरह से एकाएक ब्रह्मचारी अन्तर्हित

हो गये। महेन्द्र ने पूर्व परिचित राहसे लौट कर देखा ; नाट्य-मन्दिर में कल्याणी कन्याको लिये हुए बैठी है।

इधर सत्यानन्द एक दूसरी सुरंग में जाकर एक अकेली भूगर्भस्थित कोठरी में उतर पड़े। वहाँ जीवानन्द और भवानन्द बैठे हुए रुपये गिन-गिनकर रख रहे थे। उस कमरे में राशि-राशि स्वर्ण, चांदी, तांमा, हीरे, मोती, मूंगे रखे हुए थे। गत रातके खजाने की लूटका माल यह लोग गिन-गिनकर रख रहे हैं। सत्यानन्द ने इस कमरे में प्रवेशकर कहा,—"जीवानन्द ! महेन्द्र आयेगा। उसके आने से सन्तानों का विशेष कल्याण होगा। कारण उसके आने से उसके पूर्वजों का संचित धन माकी सेवामें अर्पित होगा। लेकिन जितने दिनों तक वह कायमनोवाक्य से मातृभक्त न हो, तबतक उसे ग्रहण न करना। तुम लोगों के हाथ का काम समाप्त होने पर तुम लोग भिन्न-भिन्न समय में उसका अनुसरण करना ; समय देखने पर उसे श्रीविष्णुमण्डप में उपस्थित करना, और समय हो, या कुसमय हो, उनलोगों की रक्षा करना। कारण, जैसे दुष्टों का दमन और दलन सन्तानों का धर्म है ; वैसे ही शिष्टकी रक्षा करना भी सन्तानों का धर्म है।

———

बारहवां परिच्छेद

अनेक दुःखों के बाद महेन्द्र और कल्याणी में मुलाकात हुई है। कल्याणी रोकर लोट पड़ी। महेन्द्र और भी रोये। रोने-गानेके बाद आंखोंके पोंछने की धूम मच गयी। जितने बार

आंखें पोंछी जाती थीं ; उतनी ही बार आंसू आ जाते थे। आंसू बन्द करने के लिये कल्याणी ने भोजन की बात उठायी। ब्रह्मचारीजी के अनुचर जो खाना रख मये थे, कल्याणी ने उसे महेन्द्र से खाने के लिये कहा। दुर्भिक्ष के दिनों में देशमें अन्न-भोजन की कोई सम्भावना नहीं, फिर भी, देशमें जो कुछ है, सन्तानों के लिये वह सुलभ है। वह जंगल साधारण मनुष्यां के लिये अगम्य है, जहां जिस वृक्षमें जो फल होते हैं, उन्हें भूखे तोड़ कर खाते हैं ! किन्तु इस अगम्य आरण्यके वृक्षोंका फल कोई नहीं पाता। इसीलिये ब्रह्मचारी के अनुचर राशि-राशि फल और दूध लाकर रख जाने में समर्थ हुए हैं। संन्यासीजी की सम्पत्ति में अनेक गो भो हैं। कल्याणी के अनुराध पर महेन्द्र ने पहले कुछ भोजन किया, इसके बाद बचा हुआ भोजन अकेले में बैठकर कल्याणी ने खाया। उनलागों ने थोड़ा दूध कन्याको पिलाया, बाकी बचा हुआ रख लिया। फिर पिलाने को आशा से ही माता-पिता का सन्तान के प्रति धर्म। इसके बाद ही थकावट और भोजन के कारण दोनों ने निद्राभिभूत हो अपना-अपना श्रम-निवारित किया। नींद से उठने के बाद दोनों विचार करने करने लगे, —"अब कहां चलना चाहिये।" कल्याणी ने कहा,—"घर पर बिपद् की सम्भावना समझकर हमने गृहत्याग किया था, लेकिन अब देखती हूं कि बाहर घरसे भी अधिक कष्ट है। न हो चलो, घर ही लौट चलें।" महेन्द्रकी भो यही इच्छा थी। महेन्द्र की इच्छा है कि कल्याणी को घरपर बैठाकर, काई एक विश्वासी अभिभावक नियुक्तकर, इस परम-रमणीय, अपार्थिव पवित्रायुक्त, मातृसेवाव्रतको ग्रहण करेंगे। अतः इस बात पर वह सहज ही सम्मत हो गये। अब दोनों ही

प्राणियों ने थकावट दूर होने पर कन्याको गोदमें ले पदचिह्नकी तरफ फिर यात्रा की।

किन्तु पदचिह्न जाने के लिये किस राहसे जाना होगा, उस दुर्भेद्य अरण्यमें वे कुछ भी समझ न सके। उन्होंने समझ लिया था कि जंगल पार होते ही हमें राह मिल जायेगी और पदचिह्न पहुंच सकेंगे। लेकिन वहां तो वनका ही थाह नहीं लगता है। बहुत देर तक वह लोग बनके अन्दर इधर-उधर चक्कर लगाते रहे और बारंबार घूम-फिरकर वह लोग मठमें ही पहुंच जाते थे। उन्हें जंगल से पार होनेवाली राह ही मिलती न थी। यह देखते हुए सामने एक वैष्णव वेशधारी खड़े हंस रहे थे। यह देखकर महेन्द्रने रुष्ट होकर उनसे कहा,—"गोस्वामी! खड़े-खड़े हँसते क्यों हो?"

गोस्वामी बोले,—"तुम लोग इस बनमें आये कैसे?"

महेन्द्र—जैसे भी हो, आ गये हैं।

गोस्वामी—प्रवेश कर सके, तो बाहर क्यों नहीं निकल पाते हो?

यह कहकर वैष्णव फिर हंसने लगे।

महन्द्रने वैसे ही रुष्ट स्वरमें कहा,—"हंसते तो हो, लेकिन क्या तुम इसके बाहर निकल सकते हो?"

वैष्णवने कहा,—"मेरे साथ आओ, मैं राह बता देता हूं। अवश्य ही तुम लोग ब्रह्मचारीजी के संग आये होगे, अन्यथा न तो कोई यहां आ सकता न निकल ही सकता है। अपरिचितों के लिये यह भूल भुलैया है।

यह सुनकर महेन्द्रने कहा,—"आप भी सन्तान हैं?"

वैष्णवने कहा,—"हां, मैं भी सन्तान हूं, मेरे साथ आओ। तुम्हें राह दिखाने के लिये ही मैं यहां खड़ा हूं।"

महेन्द्रने पूछा,—"आपका नाम क्या है ?"

वैष्णवने उत्तर दिया,—"मेरा नाम धीरानन्द स्वामी है।

यह कहकर धीरानन्द आगे आगे चले और कल्याणी के साथ महेन्द्र पीछे-पीछे। धीरानन्द ने एक बड़ी ही दुर्गम राहसे उन्हें जंगलके बाहर कर दिया और राह बता दी! इसके बाद वह फिर जंगलमें पलटकर गायब हो गये।

आनन्दारण्य से बाहर निकल आनेपर कुछ दूरतक राह चलने में तो जंगल उनके एक बाजू रहा। जंगलकी बगल से ही वह शायद राह गयी है, एक जगह जंगल में से ही एक छोटी नदी कलकल करती बहती है। जल बहुत हो साफ है लेकिन देखने मे जंगल की छायासे जल भी काला दिखाई देता है। नदीके दोनों बाजू सघन बड़े-बड़े वृक्ष मनोरम छाया किये हुए हैं। विभिन्न जातीय पक्षी उन पेड़ों पर बैठे कलरव कर रहे हैं। उनका कलरव कूजन नदीकी कलकल ध्वनि से मिलकर अपूर्व श्रुतिमधुर जान पड़ता हैं। वैसे ही वृक्षके रंगसे नदी जलका रंग भी सदृशता प्रतिपादित कर रहा है। कल्याणी का मन भी शायद उस रंगमें मिल गया। कल्याणी नदी तटके एक वृक्षसे लगकर बैठ गयी। उन्होंने अपने पतिको भी बैठने को कहा। कल्याणी ने पतिकी गोदसे कन्याको अपनी गोदमें ले लिया। बहुत देरतक कल्याणी अपने पतिके हाथों को अपने हाथमें लिये बैठी रही। फिर बोली,—"तुम्हें आज बहुत उदास देखती हूं। विपद जो आई थी, उससे तो उद्धार मिल गया है, अब इतना दुःख क्यों ?"

महेन्द्रने एक ठण्डी सांस लेकर कहा,—"मैं अब अपने में नहीं हूं। मैं क्या करूँ—कुछ समझ में नहीं आता।"

कल्याणी—क्यों ?

महेन्द्र—तुम्हारे खो जाने पर मेरा क्या हाल हुआ सुनो।

यह कहकर महेन्द्रने अपनी सारी कहानी सविस्तार वर्णन कर दी।

कल्याणीने कहा,—"मुझे बड़ी विपदों का सामना करना पड़ा, बहुत तकलीफ उठाई। तुम उन्हें सुनकर क्या करोगे? इतने दुःखों पर भी मुझे कैसे नींद आई थी, कह नहीं सकती, कल आखीरी रात भी मैं सोई थी। नींदमें मैंने एक स्वप्न देखा। देखा, नहीं कह सकती, किस पुण्यबल से, मैं एक अपूर्व स्थानमें गयी हूं। वहां मिट्टी नहीं है। केवल प्रकाश अति शीतल, बादल हट जानेपर जैसा प्रकाश रहता है, वैसा ही प्रकाश। वहां मनु य नहीं थे, केवल प्रकाशमय मूर्तियां थीं, वहां शब्द नहीं होता था, केवल दूर अपूर्व संगीत जसा नाद सुनाई पड़ता था। सदा नयी खिली हुईं, मल्लिका मालती, गन्धराज की अपूर्व सुगन्धि। वहां सबसे ऊँचे दर्शनीय स्थानपर कोई बैठा था, मानों आगमें तपा हुआ नील-पवत धधकता हुआ बैठा हो। उसके माथेपर सूर्यके प्रकाश जैसा मुकुट था। उसके चार हाथ थे। उसके दोनों बाजू कौन था, मैं पहचान न सकी, लेकिन कोई स्त्री मूर्त्ति थी। लेकिन उनमें इतनी ज्योति, इतना रूप, इतना सौरभ था कि मैं उधर देखते ही विह्वल हो गयी। उधर ताक न सकी, देख न सकी कि वह कौन है? उन्हीं चतुर्भुजके सामने एक स्त्री और खड़ी है, वह भी ज्योतिर्मयी थीं। लेकिन चारों तरफ मेघ जैसा था. आभा पूरी तरह दिखाई नहीं देती थी। अस्पष्ट रूपमें जान पडता कि वह नारीमूर्त्ति अति दुर्बल, मर्मपीड़ित, आनन्यरूप, लेकिन रो रही हैं। वहां के मन्द सुगन्ध पवनने मानों मुझे घुमाते फिराते वहां चतुर्भुज मूर्तिके सामने ले जा खड़ा किया। उस मेघ-मण्डिता शीर्णा

स्त्रीने मुझे देखकर कहा,—"यही है, इसीके कारण महेन्द्र मेरी गोदमें आता नही है।"

इसके बाद ही एक अपूर्व वंशी जैसा मधुर शब्द सुनाई पड़ा। वह शब्द उन चतुर्भुज का था, उन्होंने मुझसे कहा,—"तुम अपने पतिको छोड़कर मेरे पास चली आओ। यह तुमलोगों की मां है, महेन्द्र इसकी सेवा करेगा। तुम यदि पतिके पास रहोगी। तो वह इनकी सेवा कर न सकेगा। तुम चली आओ।" मैने रोकर कहा,—"पतिको छोड़कर कैसे चली आऊँ?" इसके बाद ही फिर उसी अपूर्व स्वरमें उन्होंने कहा,—"मैं ही स्वामी, मैं ही पुत्र, मैं ही माता, मैं ही पिता, मैं ही कन्या हूं, मेरे पास आओ।" मैंने क्या उत्तर दिया, मुझे याद नहीं; लेकिन इसके बाद ही नींद खुल गयी।" यह कहकर कल्याणी चुप हो रही।

महेन्द्र विस्मित, स्तम्भित, भीत होकर चुप हो रहे। माथे पर कोई चिल्ला उठा। पपीहा, अपने स्वरसे आकाश गुंजाने लगा; कोकिल सप्तस्वर भरने लगी। भृङ्गराज की झनकार से जंगल गूंज उठा। पैरोंके नीचे तरिनी मृदु कल्लोल कर रही थी। बाहु वन्य पुष्पों के सौरभ से मन हरा हो रहा था। कहीं-कहीं नदी-जलकी सूर्य-रश्मि चमका रही थी। कहीं ताड़के पत्ते हवाके झोंके से मरमरा रहे थे। दूर नीली पर्वत श्रेणी दिखाई पड़ रही थी। दोनों ही जन मुग्ध नीरव हो, यह सब देखते रहे। बहुत देर बाद कल्याणी ने फिर पूछा,-"क्या सोच रहे हो?"

महेन्द्र—यही सोचता हूं कि क्या करना चाहिये, स्वप्न केवल विभीषिकामात्र है, अपने ही हृदय में पैदा होकर अपने ही में लीन हो जाता है। चलो घर चलें।

कल्याणी—जहां देवता तुम्हें जाने को कहते हैं, तुम वहीं जाओ।

यह कहकर कल्याणी ने कन्या अपने पतिकी गोदमें दे दी। महेन्द्र ने उसे अपनी गोदमें लेकर पूछा,— और तुम—तुम कहां जाओगी ?"

कल्याणी अपने दोनों हाथसे दोनों आंखों को ढंके हुई, साथ ही मस्तक पकड़े हुई बोली,—"मुझे भी भगवान् ने जहां जाने को कहा है, वहीं जाऊँगी।

महेन्द्र चौंक उठे। बोले,—"वह कहां; कैसे जाओगी ?"

कल्याणी ने वही अपने पासकी जहर की डिबिया दिखाई।

महेन्द्रने डरते हुए भौंचका होकर कहा,—"यह क्या ? जहर खाओगी ?"

कल्याणी—मनमें तो सोचा था, खाऊँगो ; लेकिन—"

कल्याणो चुप होकर विचार में पड़ गयी। महेन्द्र उसका मुंह ताकते रहे। प्रति निमेष वर्ष-सा प्रतीत होने लगा। उन्होंने देखा कि कल्याणी ने बात पूरा न कही ; अतः बोले,—"लेकिन के बाद आगे क्या कह रही थीं ?"

कल्याणी—मन में था कि खाऊँगी ; लेकिन तुम्हें छोड़कर, सुकुमारी को छोड़कर वैकुण्ठ जानेकी भी मेरी इच्छा नहीं होती। मैं न मरूँगी।

यह कहकर कल्याणो ने विषकी डिबिया जमीन पर रख दी। इसके बाद दोनों ही पत्नी-पुरुष भूत-भविष्यत् की अनेक बातें करने लगे। बातें करते हुए दोनों ही अन्मनस्क हो उठे। इसी समय खेलते-खेलते सुकुमारी कन्याने विषकी डिबिया उठा ली। उसे किसीने न देखा।

सुकुमारी ने मनमें सोचा कि बढ़िया खेलने की चीज है। उसने इस डिबिया को एकबार बाएँ हाथमें लेकर दाहने हाथसे खींचा, इसके बाद दाहने हाथसे पकड़ कर बाएँ हाथसे खींचा।

इसके बाद दोनों ही हाथों से उसे खींचना शुरू किया। फल यह हुआ कि डिबिया खुल गयी। उसमें की जहर की टिकिया बाहर गिर पड़ी।

बापके कपड़े के ऊपर वह टिकिया गिरी—सुकुमारी ने उसे देखा, मनमें सोचा कि यह एक दूसरी खेलने की चीज है। डिबिया के दोनों ढक्कन उसने छोड़ दिये, और उस टिकिया को उठा लिया।

डिबिया को सुकुमारी ने मुंह में क्यों नहीं डाला; नहीं कहा जा सकता। लेकिन टिकिया में उसने जरा भी विलम्ब न किया। प्राप्तिमात्रेण-भोक्तव्यं सुकुमारी ने उस जहर की टिकिया को मुंहमें डाल लिया।

"क्या खाया! क्या खाया! गजब हो गया?"

यह कहती हुई कल्याणी ने कन्याके मुंहमें उंगली डाल दी। उस समय दोनों ने देखा कि विषकी डिबिया खाली पड़ी हुई है। सुकुमारी ने सोचा कि खेलकी चीज है, अतः उसने उसे दांतों से दबा लिया और माताका मुंह देखकर मुस्कराने लगी। लेकिन जान पड़ता है, इसी समय जहर का कड़वा स्वाद उसे मालूम पड़ा और उसने बिगाड़कर मुंह खोल दिया। वह टिकिया दांतों में चिपकी हुई थी, माताने तुरत निकालकर जमीन पर फेंक दी। लड़की रोने लगी।

टिकिया उसी तरह पड़ी रही। कल्याणी तुरत नदी तटपर जाकर अपना आंचल भिगो लाई और लड़कीके मुंहमें जल देकर उसने धुलवा दिया। बड़ी ही कातर बानीसे कल्याणी ने महेन्द्र से पूछा,—"क्या कुछ पेटमें गया होगा?"

बुरी बात हो मां-बापके मुंहसे पहले निकलती है, जहां अधिक प्रेम है, वहां भय भी बहुत अधिक होता है महेन्द्रने यह

कभी देखा न था कि टिकिया पहले कितनी बड़ी थी। अब उन्होंने टिकिया हाथमें उठाकर मजेमें उसे देखकर कहा,—"मालूम तो होता है, कुछ खा गयी है।"

कल्याणी को भी कुछ ऐसा ही विश्वास हुआ। टिकिया हाथमें लेकर बहुत देरतक वह भी उसकी जाँच करती रही। इधर कन्याने दो-एक घूंट रस जो पी लिया था; उससे उसकी विकृता-वस्था उपस्थित हुई। कुछ छटपटाने लगी, रोने लगी, अन्तमें कुछ अवमग्न हो पड़ी। तब कल्याणी ने पतिसे कहा,—"अब क्या देखते हो? जिस राहपर भगवान् ने बुलाया है, उसी राहपर सुकुमारी चली, मुझे भी वही राह लेनी पड़ेगी।"

यह कहकर कल्याणी ने उस टिकिया को मुँहमें डाल लिया और एक क्षणमें निगल गयी।

महेन्द्र रोने लगे। "क्या किया, कल्याणी! अरे तुमने यह क्या किया?"

कल्याणी ने कोई उत्तर न देकर पतिके पदकी धूलि माथे लगाई। फिर बोली,—"प्रभु! बात बढ़ाने से बात बढ़ेगी; मैं चली।"

"कल्याणी! क्या किया?" कहकर महेन्द्र चिल्लाकर रोने लगे। बड़े ही धीमे स्वरमें कल्याणी बोली, "मैंने अच्छा ही किया है; नाचीज औरत के पीछे तुम मातृभूमि की सेवा से वंचित रहते। देखो, मैं देववाक्यका उल्लघन कर रही थी, इसलिये मेरी कन्या गयी। थोड़ा और अवहेलना करने से तुम सर विपत्ति आती।"

महेन्द्र ने रोते हुए कहा,—"अरे, तुम्हें कहीं बैठाकर मैं चला जाता, कल्याणी!—कार्य सिद्ध हो जाने पर फिर हमलोग मिलकर सुखी होते। कल्याणी! मेरी सर्वस्व! तुमने यह क्या

किया ? जिस भुजाके बलपर मैं तलवार पकड़ता, हाय ! तुमने वही भुजा काट दी। तुम्हें खोकर मैं क्या रह जाऊँगा ?"

कल्याणी। कहां मुझे ले जाते ?—कहां स्थान है ? मां-बाप, सगे-सम्बन्धी सभी तो इस दुर्दिन में चले गये हैं। किसके धरमें जगह है ; कहां जानेकी राय है ? कहां ले जाओगे ? मैं काल-ग्रह हूं। मैंने मरकर अच्छा ही किया है। मुझे आशीर्वाद दो—मैं उस-उसी आलोकमय लोकमें जाकर तुम्हारी प्रतीक्षा में रहूं और फिर तुम्हें पाऊं।"

यह कहकर कल्याणी ने फिर स्वामीका पदरेणु ग्रहण किया। महेन्द्र कोई उत्तर न देकर रोते ही रहे।

कल्याणी फिर—अति मृदु, अति मधुर, अतीव स्नेह-मय कण्ठसे बोली,—"देखो, देवताओं की इच्छा, किस को मजाल है कि इसका उल्लंघन कर सके ? मुझे जानेकी आज्ञा उन्होंने दी है—तो क्या मैं किसी तरह भी रुक सकती हूं ? मैं स्वयं न मरती—तो कोई मार डालता ? मैंने आत्महत्या कार अच्छा ही किया है। तुमने देशोद्धार का जो व्रत लिया है ; उसे तन-मन धनसे पूरा करो। इसीमें तुम्हें पुण्य होगा। इसी पुण्यसे मुझे भी स्वर्गलाभ होगा। हम दोनों ही साथ-साथ अक्षय स्वर्गसुख का उपभोग करेंगे।

इधर बालिका एकबार दूधकी उल्टीकर संभलने लगी। उसके पेटमें जिस परिमाण में विष गया था वह मारात्मक नहीं था। लेकिन महेन्द्रका ध्यान उस समय उधर न था। उन्होंने कन्याको कल्याणी की गोदमें देकर दोनों का गाढ़ आलिंगन कर फूट-फूटकर रोना शुरू किया। उस समय अरण्य में से मृदु अक्षय मेघ गम्भीर शब्द सुनाई पड़ने लगा—

"हरे मुरारे मधुकैटभारे !
गोपाल गोविन्द मुकुन्द प्यारे !"

उस समय कल्याणी पर विषका प्रभाव हो रहा था ; कुछ चेतना लुप्त हो चली थी ; उन्होंने मोहाच्छन्न हृदय से सुना, मानो वैकुण्ठ से अपूर्व ध्वनि उद्गित हो रही है—

"हरे मुरारे मधुकैटभारे !
गोपाल गोविन्द मुकुन्द शौरे !"

तब कल्याणी ने अप्सरानिन्दित कण्ठसे बड़े ही मोहक स्वरमें पुकारा—

"हरे मुरारे मधुकैटभारे !—"

महेन्द्र से बोली, -"कहो—

"हरे मुरारे मधुकैटभारे !"

कानन से उत्थित मधुर स्वर, और कल्याणी के मधुर वस्र पर विमुग्ध होकर कातर हृदय से एकमात्र ईश्वर को ही सहाय समझकर महेन्द्रने भी पुकारा -

"हरे मुरारे मधुकैटभारे !"

तब मानो चारो तरफ से ध्वनित होने लगा—

"हरे मुरारे मधुकैटभारे !"

तब मानो वृक्षके पातों से भी आवाज निकलने लगी—

"हरे मुरारे मधुकैटभारे !"

नदीकी कलकल ध्वनिमें भी वही शब्द हुआ—

"हरे मुरारे मधुकैटभारे !"

अब महेन्द्र अपना शोक-सन्ताप भूल गये । उन्मत्त होकर कल्याणी के साथ एक स्वरसे गाने लगे—

"हरे मुरारे ∙धुकटभारे !"

जंगलमें से भी उनके स्वरसे मिली हुई वाणी निकली,—

"हरे मुरारे मधुकैटभारे !"

कल्याणी का कण्ठ क्रमशः क्षीण होने लगा; फिर भी, वह बुला रही है—

"हरे मुरारे मधुकैटभारे !"

इसके बाद भी कण्ठ क्रमशः निस्तब्ध होने लगा, कल्याणी के मुंहसे अब शब्द नहीं निकलता। आंखें ढंक गयीं, अंग शीतल हो गये। महेन्द्र समझ गये कि कल्याणी ने "हरे मुरारे" कहते हुए वैकुण्ठ प्रयाण किया। इसके बाद ही पागलों की तरह उच्च स्वरसे कानन को कम्पित करते हुए पशु-पक्षियों को चौंकाते हुए महेन्द्र पुकार ने लगे—

"हरे मुरारे मधुकैटभारे !"

इसी समय किसी ने आकर उनका आलिंगन किया और उसी उच्चस्वर में वह भी कहने लगा—

"हरे मुरारे मधुकैटभारे !"

तब उस अनन्तकी महिमा से, उस अनन्त अरण्य में, अनन्त पथगामी शरीर के सामने दोनों जन अनन्त नाम का गायन करने लगे। पशु-पक्षी नीरव थे; पृथिवी अपूर्व शोभा-मयी थी; इस परम गीतके उपयुक्त मन्दिर था वह। सत्यानन्द महेन्द्र को बाहुवेष्टितकर बैठ गये।

— · —

तेरहवां परिच्छेद

इधर राजधानी की शाहीराहों पर बड़ी हलचल उपस्थित हो गयी। शोर मचने लगा कि नवाब के यहाँ से जितना खजाना कलकत्ते आ रहा था, संन्यासियों ने सब मारकर छीन लिया है। राजाज्ञा से सिपाही और वलमटेर संन्यासियों को पकड़ने के लिये छूटे। उस समय दुर्भिक्षपीड़ित प्रदेश में वास्तविक संन्यासी रह ही न गये थे। कारण, वह लोग भिक्षाजीवी ठहरे-जनता स्वयं खाने को नहीं पाती, तो उन्हें वह कैसे दे सकती है? अतएव जो असली संन्यासी भिक्षुक थे, वह लोग पेटकी ज्वाला से व्याकुल होकर काशी-प्रयाग भाग गये थे। आज हलचल देखकर कितनों ने ही अपना संन्यासी वेष त्याग दिया। राजाके वुभुक्षु अनुचर संन्यासियों को न पाकर घर-घरमें तलाशी लेकर खाने और पेट भरने लगे। केवल सत्यानन्दने किसी तरह भी अपना गैरिक वस्त्र परित्याग न किया।

उसी कल्लोलवाहिनी नदी तटपर शाहीराह की बगल में ही पेड़के नीचे कल्याणी पड़ी हुई है। महेन्द्र और सत्यानन्द परस्पर बाहुवेष्टित साश्रुलोचन भगवन्नाम उच्चारण में लगे हुए हैं। उसी समय जमादार सिपाहियों का दल लिये हुए वहाँ पहुंच गया। संन्यासी के गलेपर एक बारगी हाथ ले जाकर जमादार बोला,—"यह साला संन्यासी है।"

इसी तरह एक दूसरे ने महेन्द्र को पकडा। कारण, जो संन्यासी का साथी है, वह अवश्य संन्यासी होगा। तीसरा एक घासपर पड़े हुए कल्याणी के शरीर को तरफ लपका, उसने देखा कि औरत मरी हुई है, संन्यासी न होने पर भी हो सकती है। उसने उसे छोड़ दिया। बालिका को भी यही ख्यालकर

उसने छोड़ दिया। इसके बाद उन सबने और कुछ न कहा, तुरत बांध लिया और वह सब ले चले दोनों जनको। कल्याणी का मृतदेह और कन्या बिना रक्षक के पेड़के नीचे पड़ी रही।

पहले तो शोकमें अभिभूत और ईश्वर प्रेममें उन्मत्त हुए महेन्द्र प्रायः विचेतनवस्थामें थे। क्या हो रहा था, क्या हुआ, इसे वह समझ न सके। बन्धन में भी उन्होंने कोई आपत्ति न की। लेकिन दो-चार पैर अग्रसर होते ही वह समझ गये, कि यह सब मुझे बांधे लिये आ रहे हैं। कल्याणी का शरीर पड़ा हुआ है, संस्कार न हुआ। शिशु-कन्या भी पड़ी हुई है। इस अवस्था में उन्हें हिंस्र पशु खा जा सकते हैं। मनमें यह भाव आते ही महेन्द्र के शरीर में बल आ गया और उन्होंने कलाइयों को मरोड़कर बन्धन तोड़ डाला, पासके ही जमादार को इस जोरकी लात लग गयी कि वह लुढ़कता हुआ दस हाथ दूर चला गया। उन्होंने पासके एक सिपाही को उठाकर फेंका, लेकिन इसी समय पीछे के तीन सिपाहियों ने उन्हें पकड़कर फिर निश्चेष्ट कर दिया। इसपर दुःखसे कातर होकर महेन्द्र ने संन्यासीसे कहा,—"आप जरा भी मेरी सहायता करते, तो मैं इन पांचो दुष्टोंको यमद्वार भेज देता।" सत्यानन्द ने कहा,—"मेरे इस बुढ़े शरीर में बलही कहाँ है? मैं तो जिन्हें बुला रहा हूं, उसके सिवा मेरा कोई सहारा नहीं है। जो होना है—वह होकर रहेगा। तुम विरुद्धाचरण न करो। हम इन पांचोंको पराभूत कर न सकेंगे। देखें, कहां ले जाता है, भगवान हर जगह रक्षा करेंगे।"

इसके बाद इन लोगोंने मुक्तिकी फिर कोई चेष्टा न की। चुपचाप सिपाहियों के पीछे-पीछे चलने लगे। कुछ दूर जाने पर सत्यानन्द ने सिपाहियों से पूछा,—"बाबा! मैं तो हरिनाम

कर रहा था, क्या भगवान् का नाम लेने में कोई बाधा है?" जमादार समझ गया कि सत्यानन्द भला आदमी है। उसने कहा,--"तुम भगवान् का नाम लो, तुम्हें रोकूँगा नहीं, तुम वृद्ध ब्रह्मचारी हो, शायद तुम्हारे छुटकारे का हुक्म हो जायगा। यह बदमाश फाँसी चढ़ेगा।"

इसके बाद ब्रह्मचारी मृदुस्वर से गाने लगे—

"धीर समीरे तटिनीतीरे वसति वने वरनारी।
मा कुरु धनुर्धर गमनविलम्बनमतिविधुरा सुकुमारी॥
इत्यादि।

नगर में पहुंचने पर वह लोग कोतवाल के समीप उपस्थित किये गये। कोतवाल ने राजाके पास इत्तिला भेजकर सम्प्रति उन्हें फाटक के पासके हवालात में रखा। वह कारागार अति भयानक था, जो उसमें जाता था, प्रायः बाहर नहीं निकलता था। क्योंकि कोई विचार करने वाला ही न था। अंगरेजों का जेलखाना नहीं है और न उस समय अंगरेजों के हाथ में विचार था। आज नियम का दिन है—उस समय अनियम के दिन थे। नियम और अनियम के दिनों की जरा तुलना करो।

चौदहवां परिच्छेद

रात हो गयी है। कारागार में कैद सत्यानन्द ने महेन्द्र से कहा,—"आज बड़े आनन्द का दिन है। कारण, हमलोग कारागार में कैद हैं। कहो—"हरे मुरारे!"

महेन्द्र ने बड़े कातर स्वरमें कहा,—"हरे मुरारे !"

सत्यानन्द—कातर क्यों होते हो, बेटे ? तुम्हारे इस महाव्रत को ग्रहण करने पर तुम्हें स्त्री-कन्या का त्याग तो करना ही पड़ता, फिर तो कोई सम्बन्ध रह न जाता।

महेन्द्र—त्याग एक बात है, यमदण्ड दूसरी बात। जिस शक्तिके सहारे में यह व्रत ग्रहण करता, वह शक्ति मेरी स्त्री-कन्याके साथ चली गयी।

सत्यानन्द—शक्ति आयेगी। मैं शक्ति दूंगा। महामन्त्र से दीक्षित हो ; महाव्रत ग्रहण करो।

महेन्द्र ने विरक्त होकर कहा,—"मेरी स्त्री और कन्या को स्यार और कुत्ते खाते होंगे—मुझसे किसी व्रतको बात न कहिये।"

सत्यानन्द—इस विषय में निश्चिन्त रहो, सन्तानों ने तुम्हारी स्त्री का संस्कार किया होगा—कन्या को उपयुक्त स्थानमें रखा होगा।

महेन्द्र बड़े आश्चर्य में आये। उन्हें विश्वास होता न था। बोले,—"आपने कैसे जाना ? आप तो बराबर मेरे साथ रहे।"

सत्यानन्द—हमलोग महाव्रत से दीक्षित हैं। हमलोगों पर भगवान् की दया है। आज रातको ही तुम्हें यह खबर मिल जायेगी ; आज रातको ही तुम कारागार से मुक्त होगे।

महेन्द्र कुछ न बोले—सत्यानन्द समझ गये कि महेन्द्रको विश्वास होता नहीं है। इसपर सत्यानन्द ने कहा,—"विश्वास न होता हो, परीक्षा करके देख लो।"

यह कहकर सत्यानन्द कारागार के दरवाजे तक आये। उन्होंने क्या किया, अन्धेरे में महेन्द्र देख न सके। लेकिन इतना

वह समझ गया कि उन्होंने किसी से बातें कीं। उनके लौट आने पर महेन्द्र ने पूछा,—"कैसी परीक्षा ?"

सत्यानन्द तुम अभी कारागार से मुक्ति लाभ करोगे।

उनके यह बात कहते-कहते कारागार का दरवाजा खुल गया। एक व्यक्तिने घरके भीतर आकर कहा,—"महेन्द्र सिंह किसका नाम है ?"

महेन्द्र ने उत्तर दिया, -"मेरा नाम है।"

आगन्तुक ने कहा,—"तुम्हारी रिहाई का हुक्म हुआ है, जा सकते हो।"

महेन्द्र पहले तो आश्चर्य में आये ; फिर सोचा, झूठी बात है। अतः परीक्षार्थ वह बाहर आये। किसी ने उनकी राह न रोकी। महेन्द्र शाही राह तक चले गये।

इस अवसर में आगन्तुक ने सत्यानन्द से कहा,—"महाराज ! आप ही क्यों नहीं जाते ? मैं आपके लिये ही आया हूं।"

सत्यानन्द—तुम कौन हो ? गोस्वामी धीरानन्द ?

धीरानन्द—जी हां !

सत्यानन्द—प्रहरी कैसे बने ?

धीरानन्द—भवानन्द ने मुझे भेजा है। मैं नगर में आने के बाद और यह सुनकर कि आप इस कारागार में हैं, अपने साथ धतूरा मिली हुई थोड़ी विजया ले आया था। यहां पहरे पर जो खां साहब थे, वह उसके नशे में जमीन पर पड़े सो रहे हैं। यह जामा जोड़ा, पगड़ी, भाला जो कुछ मैंने पाया है, यह सब उन्हीं का है।

सत्यानन्द—तुम यह सब पहने हुए नगर के बाहर चले जाओ। मैं इस तरह न जाऊँगा।

धीरानन्द—लेकिन—ऐसा क्यों ?

सत्यानन्द—आज सन्तान की परीक्षा है।

महेन्द्र वापस आ गये। सत्यानन्द ने पूछा,—"वापस क्यों हुए ?"

महेन्द्र—आप निश्चय ही सिद्ध पुरुष हैं। लेकिन मैं आपका साथ छोड़कर न जाऊँगा।

सत्यानन्द—तब रहो। हम दोनों ही आज रात दूसरी तरह से बाहर होंगे।

धीरानन्द बाहर चले गये। सत्यानन्द और महेन्द्र कारागार में ही रहे।

पन्द्रहवां परिच्छेद

ब्रह्मचारी का गाना बहुतों ने सुना है। और लोगों के साथ जीवानन्द के कानों में भी वह गाना पहुंचा। महेन्द्र की रक्षा में रहना उनके लिये आदेश था। यह पाठकों को शायद याद होगा। राहमें एक स्त्री से मुलाकात हो गयी। सात दिनों से उसने खाया न था; राह किनारे पड़ी थी। उसे जीवन-दान देने में जीवानन्द को एक घण्टेकी देर लग गयी। स्त्री को बचाकर, विलम्ब होने के कारण, उसे गालियां देते हुए जीवानन्द चले आ रहे थे। देखा, प्रभुको मुसलमान पकड़े लिये जाते हैं—स्वामीजी गाना गाते हुए चले जा रहे हैं।

जीवानन्द महाप्रभु स्वामी के सारे संकेतों को समझते थे।

"धीरसमीरे तटिनीतीरे वसति बने वरनारी।"

नदीके किनारे कोई दूसरी स्त्री बिना खाये पीये तो नहीं पड़ी हुई है? सोच-विचार कर जीवानन्द नदीके किनारे चले। जीवानन्द ने देखा था कि ब्रह्मचारी मुसलमान द्वारा स्वयं गिरफ्तार होकर चले जा रहे हैं। अतः ब्रह्मचारी का उद्धार करना ही जीवानन्द का पहला कर्तव्य था। लेकिन जीवानन्द ने सोचा,—"इस संकेत का तो यह अर्थ नहीं है। उनकी जीवन रक्षा से भी बढ़कर है, उनकी आज्ञा का पालन। यही उनकी पहली शिक्षा है। अतः उनकी आज्ञा पालन ही करूंगा।"

नदीके किनारे-किनारे जीवानन्द चले। जाते-जाते उसी पेड़के नीचे नदी-तटपर देखा कि एक स्त्री की मृतदेह पड़ी हुई है और एक जीवित शिशु कन्या है। पाठकों को स्मरण होगा कि महेन्द्र की स्त्री-कन्या को जीवानन्द ने एकबार भी नहीं देखा था। मनमें सोचा,—"हो सकता है, यही महेन्द्र की स्त्री-कन्या हो। क्योंकि प्रभुके साथ ही उन्होंने महेन्द्र को देखा था। जो हो: माता मृत और कन्या जीवित है। पहले इनका रक्षा विधान ही करना चाहिये—अन्यथा बाघ-भालू खा जायेंगे। भवानन्द स्वामी भी कहीं पास ही होंगे, वह स्त्रीका अन्तिम संस्कार करेंगे।" यह सोचकर जीवानन्द कन्याको गोद में लेकर चल दिये।

लड़की को गोदमें लेकर जीवानन्द गोस्वामी उसी जंगल में घुसे। जंगल पारकर वह एक छोटे गांवमें पहुंचे। गांवका नाम भैरवीपुर है। लोग उसे भरूईपुर कहते हैं; भरूईपुर में थोड़े से सामान्य लोगोंकी बसती है। पासमें और कोई बड़ा गांव भी नहीं है। गांव पार करते ही फिर जंगल मिलता है। चारो

तरफ जंगल और बीचमें वह छोटा गांव है। लेकिन गांव है बड़ा सुन्दर। कोमल तृणोंसे भरी हुई गोचर भूमि है; कोमल श्यामल पल्लवयुक्त आम, कटहल, जामुन, ताल आदिके बगीचे हैं; बीचमें नील स्वच्छ जलसे परिपूर्ण तालाब है। जलमें बक, हंस, डाहुक आदि पक्षी; तटपर पपीहा, कोयल, चक्रवाक, कुछ दूरपर मोर पंख फैलाकर कूज रहे हैं। घर-घर में आंगन में गो, बछड़े, बैल हैं। लेकिन आजकल देशमें धान नहीं है। किसी के दरवाजे पर पींजड़े में तोता है, तो किसी के यहां मैंना। भूमि लिपी-पोती स्वच्छ है। मनुष्य प्रायः सभी दुर्भिक्ष के कारण, दुर्बल, क्लान्त और मलीन दिखाई देते हैं। फिर भी; ग्राम-वासियों में श्री है। जंगल में अनेक तरह के जंगली खाद्य पैदा होते हैं; अतः गांवके लोग वहां से फल-फूल लाते और खाकर इस दुर्भिक्ष में भी अपना प्राण बचाये हुए हैं।

एक बड़े आमके बगीचे के बीच एक छोटा-सा घर है। चारो तरफ मिट्टीकी चहारदीवारी है और चारो कोनों पर एक-एक कमरा है। गृहस्थ के पास गो बकरी है, एक मोर है, एक मैंना है, एक तोता है। एक बन्दर भी था, लेकिन उसे खाना न मिलने के कारण छोड़ दिया गया है। धान कूटने की एक ढेंकी है; बाहर बैल बँधे हैं, बगल में नींबू का पेड़ है, मालती, जूही की लताएं हैं—अर्थात् गृहस्थ सुरुचि सम्पन्न हैं। लेकिन घरमें प्राणी अधिक नहीं हैं। जीवानन्द कन्याको लिए हुए घरमें चले गये।

घरमें पहुंचते ही जीवानन्द ने आंगन के ओसारे से रखे हुए चरखे को उठा लिया और भनन्-भनन् उसे चलाने लगे। छोटी लड़की ने चरखे का शब्द कभी सुना न था। विशेषतः माताके छूटने के बादसे रो रही थी; चरखे का शब्द सुनकर भयभीत

हो और सप्तम स्वरमें गला ऊँचा कर रोने लगी। रोनेकी आवाज सुनकर एक कमरे से सत्रह-अठारह वर्षकी युवती बाहर आयी। युवती बाएं हाथपर बायां गाल रखे गर्दन झुकाए ही खड़ी होकर देखने लगी। बोली,—"यह क्या दादा! चरखा क्यों कात रहे हो? यह लड़की कहां पायी। दादा! तुम्हें लड़की हुई है क्या? दूसरी शादी की है क्या?"

जीवानन्द उठकर लड़की को उसकी गोदमें देकर चपत मारने चले; बोले, "बन्दरी कहीं की! मुझे क्या रंडुआ-भंडुआ समझ लिया है क्या? घरमें दूध है?"

इसपर युवती ने कहा,—"भला दूध क्यों न होगा? लाऊं, पियोगे?"

जीवानन्द ने कहा,—"हां, पिऊंगा?"

व्यस्त होकर युवती घरमें दूध गर्म करने लगी। तबतक जीवानन्द बैठकर चरखा कातने लगे। लड़की ने युवती की गोदमें जाकर रोना बन्द कर दिया था; उसने क्या समझा, नहीं कहा जा सकता। शायद इस युवती को खिले पुष्प जैसा देखकर सोचा हो, कि यही मेरी मां है। एकबार मात्र रोई, वह भी शायद आगकी आंच खाकर। लड़की का रोना सुनकर जीवानन्द ने आवाज लगाई अरे निमी। अरी कल मुंहीं बन्दरी तेरा दूध गर्म नहीं हुआ क्या?" उसने भी कहा,—"हो गया।" यह कहकर वह एक पथरी में दूध ढालकर जीवानन्द के पास लाकर रख बैठ गयी। जीवानन्द ने बनावटी क्रोध दिखाकर कहा,—"मन करता है, यही गर्म दूधकी पथरी तेरे ऊपर उडेल दूं। तूने क्या समझा कि मैं पियूंगा?"

निमी ने पूछा,—"तब कौन पियेगा?"

जीवानन्द—यह लड़की पियेगी; देखती नहीं, अभी दूध

पीनेवाली निरी बच्ची है ? यह सुनकर निमी पालथी मारकर कन्याको गोदमें लेकर, चमच से दूध पिलाने बैठी। एकाएक उसकी आँखों से कई बूंद आंसू ढुलक पड़े। बात यह थी कि उसे पहले एक बालक हुआ था, जो मर गया था। उसे इस तरह दूध पिलाने में अपने बच्चे की याद आ गयी।

निमी ने तुरन्त अपने आंसू पोंछकर हंसते-हंसते जीवानन्द से पूछा,—"हे दादा! बताओ, यह किसकी लड़की है ?"

जीवानन्द ने कहा,—"अरी बन्दरी! तुझे क्या पड़ा है ?"

निमीने कहा, "लड़की मुझे दोगे ?"

जीवानन्द—तू लेकर क्या करेगी ?

निमी। मैं लड़की को दूध पिलाऊँगी, गोदमें लेकर खेलाऊँगी, बड़ी करूंगी।

कहते-कहते निमीकी आंखों से आंसू लुढ़क पड़े। आंसू पोंछकर वह फिर दांत निकाल कर हंसने लगी।

जीवानन्द ने कहा, "तू लेकर क्या करेगी ? तुझे तो आप ही कितने बाल-बच्चे होंगे।"

निमी। जब होंगे तब होंगे। अभी इस लड़की को मुझे दे दो। न हो, बादमें फिर ले जाना।

जीवानन्द—तो ले ले, लेकर मर। मैं बीच-बीचमें आकर देख जाया करूंगा। यह कायस्थ की लड़की है। मैं अब चला—

निमी—वाह दादा! भला खाओगे नहीं ? समय हो गया; तुम्हें मेरी कसम खाकर तब जाना।

जीवानन्द—तेरी कसम टालकर तुझे खाऊं, या भात खाऊँ बोल ? रहने दे, तुझे न खाऊंगा; भात ही खाऊंगा, ला भात।

निमी कन्याको गोदमें लिये हुए खाना परोसने में व्यस्त हो गयी। पहले उसने जगह पानी से धो-पोंछ दी; इसके बाद पीढ़ा-पानी रखकर एक थाली में भात, रहर की दाल, परवल की तरकारी, रेहू मछली का रसा और दूध लाकर रख दिया। खाने के लिये बैठकर जीवानन्द ने कहा,—"निमाई बहन! कौन कहता है कि देशमें अकाल है? तेरे गांव में शायद अकाल घुसा ही नहीं।

निमी बोली,—"भला अकाल क्यों न होगा; भयङ्कर अकाल है। हमलोग दो ही प्राणी तो हैं, बहुत कुछ है, दे दिलाकर भी भगवान् एक मुट्ठी बचा ही देते हैं। हमलोगों के गांव में पानी बरसा था; याद नहीं है, तुमही तो कह गये थे कि वनमें पानी बरस रहा है, यहां भी बरसेगा। इसलिये हमारे गांवमें धान हो गया। गांववाले और लोग तो शहर में चावल बेच आये, हमलोगों ने नहीं बेचा।

जीवानन्द ने पूछा,—"जीजाजी कहां हैं?"

निमीने गर्दन टेढ़ीकर कहा,—"दो तीन सेर चावल बांधकर क्या जाने किसको देने गये हैं। किसी ने चावल मांगा था।"

इधर जीवानन्द के अदृष्ट में ऐसा भोजन कभी मिला न था। व्यर्थ बातचीत में समय न गंवाकर जीवानन्द दनादन गपागप-सपासप आवाज करते हुए क्षण भरमें सारा भोजन उदरस्थ कर गये। श्रीमती निमाईमणि ने केवल अपने और अपने पतिके लिये पकाया था; अपना हिस्सा उसने भाईको खिला दिया था, थाली सूनी देखकर शर्मकर अपने पतिका हिस्सा लाकर थालीमें डाल दिया। जीवानन्द ने सब ख्याल छोड़कर उस स्वादिष्ट भोजन को भी उदर नाम महागर्त में

भर लिया। अब निमाई ने पूछा,—"दादा ! और कुछ खाओगे ?"

जीवानन्द ने ढकार लेते हुए कहा,—"और क्या है ?"

निमाई बोली,—"एक पका कटहल है।"

निमाई ने कटहल भी ला रखा। विशेष कोई आपत्ति न कर जीवानन्द गोस्वामी ने उसे भी ध्वंसपुर भेज दिया। अब हंसकर निमाई ने पूछा,—"दादा ! और कुछ नहीं ?"

दादा ने कहा,—"अब रहने दे। फिर किसी दिन आकर खाऊगा।"

अन्तमें निमाई ने दादाको हाथ-मुंह धोने को पानी दिया। जल देते हुए निमाई ने पूछा,—"दादा ! मेरी एक बात रख लोगे ?"

जीवानन्द—क्या ?

निमाई—तुम्हें मेरी कसम ?

जीवानन्द—अरे बोल न, कलामुंही !

निमाई—बात रक्खोगे ?

जीवानन्द—अरे पहले बता भी तो सही।

निमाई—तुम्हें मेरी कसम-हाथ जोड़ती हूं।

जीवानन्द—अरे बाबा मंजूर है, बता तो सही, क्या कहती है ?

अब निमाई गर्दन टेढ़ीकर एक हाथ से एक हाथ की उंगली तोड़ती हुई, शर्माती हुई, कभी नीचे जमीन देखती हुई बोली,—"एकबार भाभी को बुला दूं, मुलाकात कर लो।"

जीवानन्द ने हाथ धुलानेवाले लोटे को निमी पर मारने के लिये उठाया; फिर बोले,—"लौटा दे, मेरी लड़की। तेरा अन्न भी किसी दिन वापस कर जाऊँगा। तू बन्दरी है; कलमूंही है। तुझे जो बात न कहनी चाहिये, वही बात मेरे सामने कहती है।"

निमि बोली—"अच्छा. मैं ऐसी ही सही. पर भैया ! एकबार कह दो, मैं भाभी को बुला लाऊँ।"

जीवानन्द—तो लो मैं जाता हूँ !

यह कहकर जीवानन्द उठकर द्वार की तरफ बढ़े। किन्तु शीघ्रतापूर्वक निमाई ने दौड़कर किवाड़ बन्द कर दिये और स्वयं किवाड़ से लगकर खड़ी हो गई। बोली—"मुझे मारकर ही बाहर जा सकते हो। भैया ! आज भाभी से बिना मुलाकात किये जाने न पाओगे।"

जीवानन्द बोले—"जानती है, आदमियों का शिकार करना ही मेरा काम है। मैंने अनेक आदमियों का शिकार किया है।"

अब निमि भी क्रोध में आई। बोली—"खूब किया ! अपनी पत्नी का त्याग कर दिया और आदमियों की जान ली। क्या समझते हो, इससे में डर जाऊँगी ? बहुत करोगे मारोगे, लेकिन मैं डरनेवाली नहीं हूँ। तुम जिस बाप के लड़के हो, मैं भी उसी बाप की लड़की हूँ। आदमियों के खून करने में यदि बड़ाई की बात हो, तो मुझे भी मारकर बड़ाई प्राप्त करो।"

जीवानन्द हँसकर बोले—"बुला ला—किस पापिनी को बुलायेगी—जा बुला। लेकिन देख, आज के बाद फिर अगर ऐसी बात कहेगी, तो उस साले के भाई व साले को सिर मुंडाकर गदहे पर चढ़ाकर गाँव के बाहर निकलवा दूँगा।"

निमि ने दम-ही-दम सोचा—"हुई न मेरी जीत।" यह सोचती हुई वह घर के बाहर निकल गयी। इसके बाद कुछ दूर पास-ही एक झोपड़ी में वह जा घुसी। कुटी में सैकड़ों पेबन्द लगे हुए कपड़ा पहने रुक्ष-केशी एक युवती बैठी चरखा कात रही थी। निमाई ने जाकर कहा—"भाभी ! जल्दी !" भाभी ने कहा—

"जल्दी क्या ? नन्दोई ने तुझे मारा है, तो उनके सर में तेल मलना है, क्या ?"

निमी०—बात ठीक है। घर में तेल है ?

उस युवती ने तेल की शीशी सामने खसका दी। निमाई ने झट अँजली में तेल उँडेल कर उस युवती के रूखे बालों में लगा दिया। इसके बाद झट जूड़ा बाँध दिया। फिर चपत जमाकर बोली—"तेरी ढाँकेवाली साड़ी कहाँ रखी है, बोल ?" उस स्त्री ने कुछ आश्चर्य से कहा—"क्याजी ! कुछ पागल हो गयी हो, क्या ?"

निमाई ने एक मीठा घूँसा जमाकर कहा—"निकाल साड़ी जल्दी।"

तमाशा देखने के लिये युवती ने भी साड़ी बाहर निकाल दी। तमाशा देखने के लिये, क्योंकि इतनी तकलीफ पड़ने के बाद भी उसका सदा प्रफुल्ल रहनेवाला हृदय अभी भी वैसा ही था। नव-यौवन, फूले कमल-जैसा उसकी नई उम्र का यौवन; तेल नहीं; सजावट नहीं, आहार नहीं, फिर भी, उस मैली पैबन्दवाली धोती के अन्दर से भी वह प्रदीप्त अनुपमेय सौन्दर्य फूटा पड़ता था। वर्ण में छायालोक की चंचलता, नयनों में कटाक्ष, अधरों पर हँसी हृदय में धैर्य, फिर भी, सौन्दर्य पूर्ण अभिव्यक्त। मेघ में जैसे बिजली, जैसे हृदय में प्रतिमा, जैसे जगत् के शब्दों में ही संगीत भक्त के अन्दर सुख, वैसे ही उस रूप में भी कुछ अनिर्वचनीय वस्तु थी। अनिर्वचनीय माधुर्य, अनिर्वचनीय उन्नत भाव, अनि-र्वचनीय प्रेम, अनिर्वचनीय भक्ति। उसने हँसते-हँसते (लेकिन उस हँसी को किसी ने देखा नहीं) साड़ी निकाल दी। बोली—"निमी ! भला बता तो क्या होगी ?" निमी अपने कमनीय बाहु, उसके कमनीय गले में डालकर बोली—"तू पहनेगी।"

युवती बोली—"मेरे पहनने से क्या होगा ?" निमाई बोली—"दादा आये हैं। तुझे बुलाया है।" उसने कहा—"अगर मुझे बुलाया है, तो साड़ी क्या होगी, चल इसी तरह चलूँगी।" युवती कहती जाती थी—"कभी कपड़े न बदलूँगी, चल इसी तरह मिलना होगा।" आखिर किसी तरह भी उसने कपड़े बदले नहीं। अन्त में दोनों कुटी के बाहर आईं। निमाई को भी राजी होना पड़ा। निमाई अपनी भाभी को लेकर घर के दरवाजे तक साथ गयी। इसके बाद भाभी को अन्दर कर उसने दरवाजा बन्द कर लिया और स्वयं बाहर खड़ी रही।

सोलहवाँ परिच्छेद।

उस स्त्री की उम्र यही कोई पच्चीस वर्ष के लगभग है, लेकिन देखने में निमाई से अधिक उम्र की जान नहीं पड़ती। मैले पेंवन्द की धोती पहन कर भी जब वह घर में घुसी तो जान पड़ा कि जैसे घर में उजाला हो गया। जान पड़ा, जैसे बहुतेरी कलियों का गुच्छा पत्ते से ढँका रहने पर भी पत्ता हटते ही खिल उठा हो। मानो गुलाबजल का कराबा एकाएक मुँह खुल जाने से मँहका गया हो। सुलगती हुई आग में जैसे किसी ने धूप-धूना छोड़ दिया हो और कमरे का वातावरण ही बदल जाये। पहले तो घर में घुसकर स्त्री ने पति को देखा नहीं, फिर एकाएक निगाह पड़ी कि आँगन में लगे छोटे आम के पेड़ के नीचे खड़े होकर जीवानन्द रो रहे हैं। उस सुन्दरी ने धीरे-धीरे उनके पास पहुँचकर उनका हाथ

पकड़ लिया। यह कहना भूल गया कि उसकी आँखों में जल आया नहीं। भगवान् ही जानते हैं. उसकी आँखों से आँसू की वह धारा निकलती, कि शायद जीवानन्द उसमें डूब जाते। लेकिन युवती ने अपनी आँखों में आँसू आने न दिया। जीवानन्द का हाथ पकड़कर उसने कहा—"छि! छि! रोते क्यों हो? मैं समझी कि तुम मेरे लिये रोते हो. मेरे लिये न रोना। तुमने मुझे जिस तरह रखा है, मैं उसी में सुखी हूँ।"

जीवानन्द ने माथा उठाकर, आँसू पोंछते हुए स्त्री से पूछा—"शान्ति! तुम्हारे शरीर पर यह सैकड़ों पेंवन्द की धोती क्यों है? तुम्हें तो खाने-पहनने की कोई तकलीफ नहीं है!"

शान्ति ने कहा—"तुम्हारा धन तुम्हारे ही लिये है। रुपये लेकर क्या करना चाहिये. मैं नहीं जानती। जब तुम आओगे—जब तुम मुझे ग्रहण करोगे"—

जीवा०—ग्रहण करूँगा—शान्ति! मैंने क्या तुम्हें त्याग दिया है?

शान्ति—त्याग नहीं. जब तुम्हारा व्रत पूरा होगा. जब तुम फिर मुझे प्यार करोगे—

बात समाप्त होने के पहले ही जीवानन्द ने शान्ति को छाती से लगा लिया और उसके कन्धों पर माथा रख बहुत देर तक चुप रहे। इसके बाद एक ठण्डी साँस लेकर बोले—"क्यों मुलाकात की?"

शान्ति—क्यों की तुम्हारा तो व्रत भंग हो गया—होगा?

जीवा०—हो व्रत भंग. उसका प्रायश्चित्त भी है। उसके लिये सोच नहीं है। लेकिन तुम्हें देखकर तो फिर लौटते नहीं बन पड़ता है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष और सारा संसार, व्रत, होम, याग-यज्ञ. यह सब एक तरफ है और दूसरी तरफ तुम हो। मैं

किसी तरह भी समझ नहीं पाता हूँ कि कौन-सा पलड़ा भारी है। देश तो शान्त है. मैं देश लेकर क्या करूँगा ? तुम्हारे साथ एक बीघा भूमि लेकर भी बड़े आनन्द से मेरा जीवन बीत सकता है। तुम्हें लेकर मैं स्वर्ग गढ़ सकता हूँ। क्या करना है. मुझे देश लेकर। देश की उस सन्तान का अभाग्य है—जो तुम्हारी जैसी गृहलक्ष्मी प्राप्त कर भी सुखी हो न सके। मुझसे बढ़कर देश में कौन दुःखी होगा ? तुम्हारे शरीर पर ऐसा कपड़ा देखकर मुझे लोग देश में सबसे दरिद्र ही समझेंगे। मेरे सारे धर्मों की सहायक तो तुम हो, उसके सामने फिर सनातनधर्म क्या ? मैं किस धर्म के लिए देश-देश वन-वन, बन्दूक कन्धे पर लेकर प्राणी हत्याकर इस पाप का भार संग्रह करूं ? पृथ्वी सन्तानों की होगी या नहीं, कौन जानता है ? लेकिन तुम मेरी हो, तुम पृथिवी से भी बड़ी हो, तुम्हीं मेरा स्वर्ग हो। चलो घर चलें. अब वापस न जाऊँगा।

शान्ति कुछ देर तक बोल न सकी। इसके बाद बोली—"छिः ! तुम वीर हो। मुझे इस पृथ्वी पर सबसे बड़ा सुख यही है, कि मैं वीर-पत्नी हूँ। तुम अधम स्त्री के लिये वीर-धर्म का परित्याग करोगे ? तुम मुझे प्यार न करो—मैं वह सुख नहीं चाहती—लेकिन तुम अपने वीर-धर्म का कभी परित्याग न करना। देखो, मुझे एक बात बताते जाओ, इस व्रत के भङ्ग का प्रायश्चित् क्या है ?"

जीवानन्द ने कहा—"प्रायश्चित है—दान, उपवास—१२ कानी कौड़ियाँ।"

शान्ति मुस्कराई। बोली—"जो प्रायश्चित है, मैं जानती हूँ। लेकिन एक अपराध पर जो प्रायश्चित है—वही क्या शत अपराध पर भी है ?

जीवानन्द ने विस्मित और विवश होकर कहा—"लेकिन यह सब क्यों ?"

शान्ति—एक भिक्षा है। कहो—मेरे साथ बिना मुलाकात किये प्रायश्चित न करोगे।

जीवानन्द ने हँसकर कहा—"इस बारे में निश्चिन्त रहो। बिना तुम्हें देखे. मैं न मरूँगा। मरने की ऐसी कोई जल्दी भी नहीं है। अब मैं अधिक यहाँ न ठहरूँगा. लेकिन आँख भरकर तुम्हें देख न सका। लेकिन एक दिन अवश्य देखूँगा। एक दिन हम लोगों की मन-कामना जरूर पूरी होगी। मैं अब चला. तुम मेरे एक अनुरोध की रक्षा करना। इस वेश-भूषा का त्याग कर दो। मेरे पैतृक मकान में जाकर रहो।"

शान्ति ने पूछा—"तुम इस समय कहाँ जाओगे ?"

जीवा०—इस समय मठ में ब्रह्मचारी की खोज में जाऊंगा। वह जिस भाव से नगर गये हैं. उससे कुछ चिन्ता होती है। मठ में उनसे मुलाकात न हुई तो नगर जाऊंगा।

सत्रहवाँ परिच्छेद।

भवानन्द मठ में बैठे हुए हरिगान में तल्लीन थे. ऐसे ही समय दुःखी चेहरे से ज्ञानानन्द नामक एक तेजस्वी सन्तान उनके पास आ पहुँचे। भवानन्द ने कहा—"गोस्वामी! चेहरा इतना उतरा हुआ क्यों है ?"

ज्ञानानन्द ने कहा—"कुछ गड़बड़ जान पड़ता है। कल के

काण्ड से सरकारी आदमी हरदी-गेरूआ वस्त्रधारी देखते हैं और गिरफ्तार कर लेते हैं। करीब-करीब सभी सन्तानोंने आज अपना गैरिक वस्त्र उतार दिया है। केवल सत्यानन्द प्रभु गेरुवा पहने हुए ही शहर की तरफ गये हैं। कौन जाने, कहीं मुसलमानों के हाथ पड़ जायँ।"

भवानन्द बोले—"उन्हें बन्दी कर रखे, बङ्गाल में अभी ऐसा कोई मुसलमान नहीं है। मैं जानता हूँ, धीरानन्द उनके पीछे-पीछे गये हैं। फिर भी, मैं एकबार नगर घूमने जाता हूँ, मठ की रक्षा तुम्हें सौंपे जाता हूँ।"

यह कहकर भवानन्द स्वामी ने एक अलग कोठरी में जाकर कितने ही तरह के कपड़े निकाले। भवानन्द जब उस कोठरी से निकले तो उन्हें पहचानना कठिन था। गेरुआ वस्त्र के बदले उनके पैरों में चूड़ीदार पाजामा, शरीर पर अचकन, माथे पर कंगूरादार पगड़ी और पैरों में नागौरी जूता था। वह उनका ललाटपट का चन्दन-त्रिपुण्ड साफ हो गया था, उसके बदले घुँघराले बाल कन्धे तक लहरा रहे थे। बगल में तलवार लटक रही थी। इस वेश में उनका चेहरा अपूर्व शोभा पा रहा था। उन्हें देखने से कोई पठान जातीय मुसलमान का ही भान होता था। इस तरह सशस्त्र होकर भवानन्द मठ के बाहर हुए। मठ के कोई एक कोस उत्तर दो छोटी पहाड़ियाँ बगल-बगल में थीं। पहाड़ी जंगल से भरी हुई थी। वहीं एक निभृत स्थान में सन्तानों की अश्वशाला थी। भवानन्द नें उससे एक घोड़ा निकाला और जीन आदि कसवाकर उसपर सवार हो सीधे राजधानी की तरफ चल पड़े।

जाते-जाते एकाएक उनकी गति में बाधा पड़ी। उसी राह की बगल में नदी के किनारे वृक्ष के नीचे उन्होंने कादम्बिनी-

च्युत विद्युत् की तरह दीप्तिमान् एक स्त्री को पड़ी हुई देखा। उन्होंने देखा उसमें जीवन के कोई लक्षण दिखाई नहीं पड़ते—विष की खाली डिबिया पास में पड़ी हुई है। भवानन्द विस्मित, क्षुब्ध और भीत हुए। जीवानन्द की तरह भवानन्द ने भी महेन्द्र की स्त्री-कन्या को देखा न था। जीवानन्द ने जिन कारणों से यह सन्देह किया था कि यह महेन्द्र की स्त्री-कन्या हो सकती है, भवानन्द के सामने सन्देह के लिये वह कारण भी न थे। उन्होंने ब्रह्मचारी और महेन्द्र को बन्दी रूप में ले जाये जाते भी देखा न था। कन्या भी वहाँ न थी। केवल डिबिया देखकर उन्होंने समझा कि किसी स्त्री ने विष खाकर आत्म-हत्या की है। भवानन्द उस शव के पास बैठ गये। बैठकर माथे पर हाथ रखकर बहुत देर तक परीक्षा करते रहे। नाड़ी-परीक्षा, हृदय-परीक्षा आदि अनेक प्रकार से दूसरे अपरिज्ञात तरीकों से परीक्षा कर मन-ही-मन कहा—"अभी मरी नहीं है—अभी भी समय है, बचाई जा सकती है, लेकिन बचाकर करना ही क्या है?" इस तरह कुछ क्षण तक विचार करते रहे और इसके बाद वह उठकर एकाएक वन के अन्दर चले गये। वहाँ से वह एक लता की थोड़ी पत्ती तोड़ लाये। उस पत्ती को हथेली पर मसलकर उन्होंने रस निकाला और रस को उँगलियों से दाँत खोल मुह में टपकाया, कान में डाला और थोड़ा मस्तक पर मल दिया। इसके बाद थोड़ा रस उन्होंने नाक में भी डाल दिया। इस तरह उन्होंने बारंबार किया और बीच-बीच में नाक के पास हाथ ले जाकर देखते जाते थे, कि कुछ श्वास चली या नहीं। पहले-पहल तो भवानन्द को निराशा होने लगी, लेकिन इसके बाद उनका मुँह प्रसन्नता से खिल उठा। उँगली में निश्वास की हलकी अनुभूति हुई। उत्साहित हो उन्होंने बारम्बार वही प्रक्रिया की, अब श्वास मजे में आने-जाने

लगी। नाड़ी देखी, नाड़ी चल रही थी। इसके बाद ही क्रमशः प्रभात-कालीन अरुणोदय की तरह, प्रभात के समय पद्मप्रथमोन्मेष की तरह, प्रथम प्रमानुभव की तरह कल्याणी अपनी आँख खोलने लगी। यह देखकर भवानन्द ने कल्याणी के अर्धजीवित शरीर को घोड़े पर रख और स्वयं चल नगर की तरफ निकल गये।

अठारहवाँ परिच्छेद।

संध्या होने से पहले ही सन्तान-सम्प्रदाय के सभी लोगों ने यह जान लिया कि महेन्द्र के साथ सत्यानन्द स्वामी गिरफ्तार होकर नगर की जेल में बन्द हैं। इसके बाद ही एक-एक, दो-दो, दस-दस, सौ-सौ, हजार-हजार की संख्या में आकर सन्तानगण उसी मठ की चहारदीवारी से संलग्न अरण्य में एकत्रित होने लगे। सभी सशस्त्र थे। आँखों से क्रोध की अग्नि निकल रही थी, चेहरे पर दृढ़ता और होठों पर प्रतिज्ञा थी। उन लोगों के काफी संख्या में जुट जाने पर मठ के फाटक पर हाथ में नङ्गी तलवार लिये हुए स्वामी ज्ञानानन्द ने गगनभेदी स्वर में कहा—"अनेक दिनों से हमलोग विचार करते आते हैं कि इस नवाब का महल तोड़कर, यवनपुरी का नाश कर नदी के जल में डुबा देंगे। इन सूअरों के दाँत तोड़कर आग में जलाकर माता वसुमती का उद्धार करेंगे। भाइयों! आज वही दिन आ गया है। हमलोगों के गुरु के भी गुरु परम गुरु, जो अनन्त ज्ञानमय, सदा शुद्धाचार, जो

लोकहितैषी, देशहितैषी हैं, जिन्होंने सनातनधर्म की पुनः प्रतिष्ठा के लिये आमरणव्रत लिया है, प्रतिज्ञा की है, जिन्हें हम विष्णु के अवतार के रूप में मानते हैं, जो हमारी मुक्ति के उपाय हैं, वही आज म्लेच्छ मुसलमानों के कारागार में बन्दी हैं। क्या हमलोगों की तलवार पर धार नहीं है?" हस्तप्रसारण कर ज्ञानानन्द ने कहा—"इन वाहुओं में क्या बल नहीं है?" छाती ठोककर बोले—"इस हृदय में बल नहीं है? भाइयो! बुलाओ, हरे मुरारे मधुकैटभारे! जिन्होंने मधुकैटभ का विनाश किया है, जिन्होंने हिरण्यकशिपु, कंस, दन्तवक्र, शिशुपाल, आदि दुर्जय असुरों का निधन-साधन किया है, जिनके चक्र के प्रचण्ड निर्घोष से मृत्युञ्जय शम्भु भी भयभीत हुए थे, जो अजेय हैं—रण में विजयदाता हैं, हम उन्हीं के उपासक हैं, उनके ही बल से हमारी भुजाओं में अनन्त बल है—वह इच्छामय हैं, उनके इच्छा करते ही हम रण-विजयी होंगे। चलो, हमलोग उस यवनपुरी को निर्दलन कर उसे धूलि में मिला दें। उस शूकर-निवास को अग्नि से शुद्धकर नदी जल में धो दें, उसके जर्रे-जर्रे उड़ा दें, बोलो—हरे मुरारे मधुकैटभारे!"

इसके साथ ही उस कानन में भीषण, आकाशकम्पी वज्र-निर्घोष जैसा शब्द उपस्थित हुआ—

"हरे मुरारे मधुकैटभारे!"

सहस्र-सहस्र कण्ठों के निर्घोष से आकाश काँपा, वसुन्धरा डगमगायी। सहस्र-सहस्र वाहुओं के आस्फालन से असीम-निनाद हुआ—हजारों ढालों की आवाज से कान के पर्दे फटने लगे। कोलाहल करते हुए पशु-पक्षी जङ्गल से निकल कर भागे। इस तरह जंगल से श्रेणीवद्ध शिक्षित सैन्य की तरह सन्तानगण निकल पड़े। वह लोग मुँह से हरिनाम करते हुए मिलित पद-

विक्षेप से नगर की तरफ चले। उस अँधेरी रात में पत्र-दलों का मर्मर शब्द, अस्त्रों की झनकार, कण्ठों का अस्फुट निनाद, बीच-बीच में तुमुल स्वर में हरिनाम। धीरे-धीरे, तेजस्वितापूर्वक, सरोप सन्तान-वाहिनी ने नगर में आकर नगर को त्रस्त कर दिया। इस अकस्मात् वज्राघात से नागरिक कहाँ किधर भागे पता न लगा। नगर रक्षक हतबुद्ध हो निश्चेष्ट रह गये।

इधर सन्तानों ने पहुँचते ही पहले राजकारागार में पहुँच कर उसे तोड़ डाला, रक्षकों को चटनी बना दिया और सत्यानन्द तथा महेन्द्र को मुक्त कर कन्धों पर चढ़ाकर सन्तानगण आनन्द से नृत्य करने लगे। हरिकीर्तन का अद्भुत् दृश्य उपस्थित हो गया। महेन्द्र और सत्यानन्द को मुक्त कर सन्तानों ने जहाँ-जहाँ मुसलमानों का घर पाया, आग लगा दी। यह देखकर सत्यानन्द ने कहा—"अनर्थक अनिष्ट की आवश्यकता नहीं, चलो, लौट चलो।" नगर के अधिकारियों ने सन्तानों का यह उपद्रव सुनकर एक दल सिपाहियों का उनके दमन के लिये भेज दिया। उनके पास केवल बन्दूक ही थी, यह बात नहीं, एक तोप भी साथ में थी। यह खबर पाते ही सन्तानगण आनन्द कानन से पलट पड़े, लेकिन लाठी, तलवार और छुरों से क्या हो सकता है? तोप के सामने यह लोग पराजित होकर भाग गये।

—:*:—

Surendra Mehar
Roll No 98

द्वितीय खण्ड ।

पहला परिच्छेद ।

शान्ति को बहुत थोड़ी ही उम्र में, बचपन में ही मातृवियोग हो गया था। जिन उपादानों से शान्ति का चरित्र-गठन हुआ है, उनमें एक यह प्रधान है। उसके पिता एक अध्यापक ब्राह्मण थे। उनके घर में और कोई स्त्री न थी।

स्वभावतः शान्ति के पिता जब पाठशाला में बालकों को पढ़ाते थे, तो उनकी बगल में शान्ति भी आकर बैठती थी। कितने ही छात्र तो पाठशाला में ही रहते थे, अन्य समय में शान्ति भी उन्हीं में मिलकर खेला करती थी। कभी उनकी पीठ पर चढ़ती थी कभी गोद में बैठी खेला करती थी। वह लोग भी शान्ति का आदर करते थे।

इस तरह बचपन से ही पुरुष-साहचर्य का प्रथम प्रतिफल तो यह हुआ कि शान्ति ने लड़कियों की तरह कपड़ा पहनना नहीं सीखा। या सीखा भी, तो वह ढङ्ग परित्याग कर दिया। लड़कों की तरह कछाड़ा मारकर वह धोती पहनने लगी। अगर कोई उसे लड़कियों की तरह कपड़े पहना देता था, तो वह तुरत उसे खोल देती थी और फिर कछाड़ा मारकर पहन लेती थी। पाठशाला के बालक कभी जूड़ा बाँधते न थे, अतः वह न तो

चोटी करती थी, और न जूड़ा ही बाँधती थी। फिर उसे जूड़ा बाँध ही कौन देता? घर में कोई औरत तो थी नहीं। पाठशाला के छात्र बाँस की फरांटी में उसके बाल फँसा देते थे और उसके घुँघराले बाल वैसे ही पीठ पर लहराया करते थे। विद्यार्थी ललाट पर चन्दन लगाते, भस्म लगाते थे, अतः शान्ति भी चन्दन भस्म लगाया करती थी। गले में यज्ञोपवीत पहनने के लिये शान्ति बहुत रोया करती थी। फिर भी, संध्यादि नैमित्तिक नियमों के समय वह अवश्य उनके पास बैठकर उनका अनुकरण किया करती थी। अध्यापक की अनुपस्थिति के समय लड़कों ने उसे अश्लील दो-एक सङ्केत सिखा दिये थे और वे आपस में जो कहानियाँ कहा करते थे, तोते की तरह शान्ति ने भी उन्हें रट डाले थे। भले ही वह उसका कोई अर्थ न जानती हो।

दूसरा फल यह हुआ कि बड़ी होने पर शान्ति, लड़के जो पुस्तक पढ़ा करते थे, उन्हें अनायास ही सीखने लगी। वह व्याकरण एक वर्ण भी जानती न थी, लेकिन भट्टि, रघुवंश, कुमारसंभव, नैषधादि के श्लोक व्याख्या के साथ उसने रट डाले थे। यह देखकर शान्ति के पिता ने उसे थोड़ा प्राथमिक व्याकरण भी पढ़ाना शुरू किया। शान्ति भी शीघ्र-शीघ्र सीखने लगी। अध्यापक भी बड़े विस्मयापन्न हुए। व्याकरण के साथ उन्होंने कुछ साहित्य भी उसे पढ़ाया। इसके बाद ही सब गोलमाल हो गया, शान्ति के पिता का स्वर्गवास हो गया।

अब शान्ति निराश्रय हो गयी। पाठशाला भी उठ गयी। छात्र चले गये। लेकिन वह सब शान्ति को प्यार करते थे। अतः उनमें से एक शान्ति को अपने घर ले गया। इसी छात्र ने पीछे से सन्तान-सम्प्रदाय में नाम लिखाकर अपना नाम जीवानन्द रखा। हम उन्हें जीवानन्द ही कहेंगे।

उस समय जीवानन्द के माता-पिता जीवित थे। उनके निकट जीवानन्द ने कन्या का विशेष परिचय दिया। पिता-माता ने पूछा—"लेकिन अब परायी लड़की का भार अपने ऊपर लेगा कौन?" जीवानन्द ने कहा—"मैं ले आया हूँ, इसका भार मैं ही लूगा। माता-पिता ने भी कहा ठीक है। जीवानन्द क्वांरे थे, उन्होंने शान्ति के साथ शादी कर ली।

विवाह के उपरान्त सभी लोग इस सम्बन्ध पर अनुताप करने लगे। सब लोग समझे—"काम तो ठीक नहीं हुआ।" शान्ति ने किसी तरह भी लड़कियों की तरह धोती न पहनी। किसी तरह भी वह चोटी बाँधने पर तैयार न हुई। वह घर में भी अधिक रहती न थी, पड़ोस के लड़कों के साथ बाहर खेला करती थी। जीवानन्द के घर के पास ही जंगल है। शान्ति जंगल में अकेली घुसकर कहीं मोरों, कहीं हरिणों और कहीं सुन्दर फूलों की खोज में घूमा करती थी। सास-ससुर ने पहले तो मना किया, फिर भर्त्सना की, इसके भी बाद मारा-पीटा और अन्त में कोठरी में बन्द कर दिया। डाँट-डपट से शान्ति बड़ी क्रुद्ध हुई। एक दिन दरवाजा खुला देखकर शान्ति बाहर निकली और बिना किसी से कहे-सुने कहीं चली गयी।

जंगल के अन्दर टेसू के फूलों को लेकर उनसे शान्ति ने अपने कपड़े रंग डाले और खासी साधुनी बन गयी। उस समय बंगाल में दल-के-दल संन्यासी घूमा करते थे। शान्ति भी भिक्षा माँगती-खाती जगन्नाथ क्षेत्र की राह में निकल गयी। थोड़े ही दिनों बाद उसे एक संन्यासियों का दल मिल गया। वह भी उन्हीं में मिल गयी।

उस समय के संन्यासी भी आजकल जैसे होते न थे। वह दलबद्ध होते थे, सुशिक्षित, बलिष्ठ, युद्ध-विशारद एवं अन्यान्य

गुणों से गुणवान् होते थे। वह लोग सचराचर एक तरह के राजविद्रोही होते थे—राजा का राजस्व लूटकर खाते थे। बलिष्ठ बालक पाते ही वह उन्हें अपहरण करते थे, उन्हें शिक्षितकर अपने सम्प्रदाय में मिला लिया करते थे। इसलिये लोग उन्हें 'लकड़-पकड़वा' या 'लकड़-सुघवा' भी कहते थे।

शान्ति बालक संन्यासी के रूप में उनमें मिली थी। संन्यासी लोग पहले उसका कोमल अङ्ग देखकर उसे दल में मिलाते न थे, लेकिन शान्ति की बुद्धि-प्रखरता, चतुरता, और कार्यदक्षता देखकर आदरपूर्वक उन्होंने उसे अपने दल में मिला लिया। शान्ति उनके दल में मिलकर व्यायाम करती थी, अस्त्र चलाना सीखती थी, अतः परिश्रम-सहिष्णु हो उठी। उनके साथ मिलकर उसने अनेक देश-विदेश का भ्रमण किया अनेक लड़ाइयाँ देखीं और अस्त्र विद्या में चतुर हो गयी।

क्रमशः उसके यौवन के लक्षण प्रकट होने लगे। अनेक संन्यासियों ने जान लिया कि यह छद्मवेश में स्त्री है। लेकिन सचराचर संन्यासी उस समय जितेन्द्रिय होते थे, इसलिये किसी ने ध्यान न दिया।

संन्यासियों में अनेक विद्वान् भी थे। शान्ति को संस्कृत में कुछ ज्ञान है, यह देखकर एक संन्यासी उसे पढ़ाने लगा। लेकिन क्या काबुल में गधे नहीं होते? जितेन्द्रिय संन्यासियों में वह संन्यासी कुछ दूसरे ढङ्ग का था। या हो सकता है कि शान्ति का अभिनव यौवन-सौन्दर्य देखकर वह संन्यासी अपनी इन्द्रियों द्वारा परिपीड़ित होकर अपने को वश में न रख सका हो। अतः वह अपनी शिष्या को रसाश्रित सब काव्यों को पढ़ाने लगा और उसकी व्याख्या खोलकर अश्राव्यरूप में सुनाने लगा। उससे शान्ति का अपकार न होकर कुछ उपकार ही हुआ। लज्जा

किसे कहते हैं, शान्ति ने यह सीखा ही न था। अब स्त्री स्वभाव-वश व्याख्या सुनकर स्वतः उसमें लज्जा का उदय हुआ। पुरुष-चरित्र के ऊपर निर्मल स्त्री-चरित्र की अपूर्व प्रभा उसपर आ गयी। उसने शान्ति के गुण-ग्राम को समधिक वर्धित कर दिया। शान्ति ने पढ़ना छोड़ दिया।

व्याध जैसे हरिण के पीछे दौड़ता है, वैसे ही वह संन्यासी शान्ति को देखकर उसके पीछे दौड़ता था। किन्तु शान्ति ने व्यायाम आदि के कारण पुरुष-दुर्लभ बल संचय किया था। अध्यापक के समीप आते ही वह उन्हें इस जोर के घूँसे और लात जमाती थी, जो साधारण होते न थे। एक दिन एकान्त पाकर संन्यासी ने बड़ा जोर लगाकर शान्ति का हाथ पकड़ लिया। शान्ति हाथ छुड़ा न सकी। लेकिन संन्यासी ने दुर्भाग्य-वश शान्ति का बाँया हाथ पकड़ा था। अतः दाहने हाथ से शान्ति ने संन्यासी के सर में इस जोर का घूँसा जमाया, कि संन्यासीजी वृक्ष की तरह धड़ाम से मूर्छित होकर गिर पड़े। शान्ति ने संन्यासी सम्प्रदाय का त्याग कर पलायन किया।

शान्ति निर्भय थी। अकेली वह अपने देश की तरफ चल पड़ी। साहस और बाहुबल से वह निर्विघ्न यात्रा करती रही। भिक्षा माँग कर और जङ्गली कन्दमूल फल से अपनी क्षुधा मिटाती हुई वह अनेक आपदों में विजय लाभ करती अपने सुसराल आ पहुँची। उसने देखा, श्वसुर का स्वर्गवास हो गया है, लेकिन सास ने उसे अपने घर में स्थान न दिया। जाति जाने का डर था। शान्ति तुरन्त बाहर निकल गयी।

जीवानन्द घर में ही थे। उन्होंने शान्ति का पीछा किया और राह में पकड़कर पूछा—"तुम मेरा घर छोड़कर कहाँ चली गयी थीं? इतने दिनों तक कहाँ रहीं?" शान्ति ने सारी सच्ची

बात कह दी। जीवानन्द को सच-झूठ की परख थी। जीवानन्द ने शान्ति की बात का विश्वास किया।

अप्सराओं की भ्रूविलास से युक्त कटाक्ष-ज्योति द्वारा निर्मित जो काम शर है, उसका अपव्यय पुष्प-धन्वा मदनदेव परिणीत दम्पतियों के प्रति किया नहीं करते। अङ्गरेज पूर्णिमा की रात को भी शाही राह पर गैस या बिजली बालते हैं, बङ्गाली देह में लगानेवाले तेल को ढाल देते हैं; मनुष्यों की बात तो दूर है, चन्द्रदेव सूर्यदेव के बाद भी कभी-कभी आकाश में उदित रहते हैं, इन्द्र सागर पर भी वृष्टि करता है, जिस सन्दूक में छिपाकर धनराशि रखी रहती है, कुबेर उसी सन्दूक से धन ले जाते हैं, यमराज जिसके घर के सबको ले गये रहते हैं, प्रायः उसी घर के अवशिष्ट लोगों पर दृष्टि डालते हैं, केवल रतिपति की निर्बुद्धिता का ऐसा काम नहीं होता। जहाँ वैवाहिक गाँठ बँध जाती है—वहाँ फिर वह परिश्रम नहीं करते। प्रजापति के ऊपर सारा भार देकर, जिसके हृदय के रक्त का वह दाप कर सकें, मदनदेव वहीं जाते हैं। लेकिन आज जान पड़ता है, पुष्पधन्वा को और कोई काम न था—एकाएक उन्होंने दो पुष्प बाणों का अपव्यय किया। एक ने आकर जीवानन्द के हृदय को बेध दिया—दूसरे ने शान्ति के हृदय में प्रवेश कर उसे बता दिया कि यह स्त्रियों का कोमल हृयद है। नवमेघ निर्मुक्त प्रथम जलकणानिषिक्त पुष्पकलिकाकी तरह सहसा शान्ति खिलकर जीवानन्द के मुंह की तरफ निहारती रही।

जीवानन्द ने कहा—"मैं तुम्हें परित्याग न करूँगा। मैं जब तक लौट न आऊँ, तुम यहीं खड़ी रहो।"

शान्ति ने पूछा—"तुम लौटकर आओगे न?"

जीवानन्द और कोई उत्तर न देकर, और किसी तरफ

खयाल न कर, राह की बगल में नारियल वृक्ष की छाया में शान्ति के अधरों पर अधर रख, सुधापान कर, चले गये।

माता को समझा-बुझाकर और विदा लेकर जीवानन्द तुरन्त लौट आये। हाल में ही जीवानन्द की बहन निमाई की शादी भैरवीपुर में हुई थी। बहनोई के साथ जीवानन्द का प्रेम था। जीवानन्द शान्ति को लेकर वहीं गये। बहनोई ने उन्हें थोड़ी जमीन दी। जीवानन्द ने उस पर एक कुटी का निर्माण किया। वहीं वह शान्ति के साथ सुख पूर्वक रहने लगे। स्वामी के सहवास में शान्ति का पुरुष भाव धीरे-धीरे गायब होने लगा। रमणीय नारी चरित्र और स्वभाव का उदय होने लगा। सुख-स्वप्न की तरह उनका जीवन बीतने लगा। लेकिन सहसा वह सुख-स्वप्न भङ्ग हो गया। जीवानन्द सत्यानन्द के हाथ में पड़कर सन्तानधर्म ग्रहण कर शान्ति को परित्याग कर चले गये। परित्याग के बाद यह प्रथम मिलन निमाई उद्योग से हुआ था। उसका वर्णन पूर्व परिच्छेद में हो चुका है।

दूसरा परिच्छेद।

जीवानन्द के चले जाने पर शान्ति निमाई के दरवाजे पर जा बैठी निमाई गोद में लड़की लेकर उसके पास आ बैठी। शान्ति की आखों में आँसू नहीं है, उसने उन्हें पोंछ डाला है, बल्कि चेहरे पर मधुर मुस्कराहट है। फिर भी, वह कुछ तो गम्भीर, चिन्तायुक्त, अनमनी तो दिखाई ही पड़ती है, उसे देखकर निमाई बोली—"मुलाकात तो हो गयी न ?"

शान्ति ने कोई उत्तर न दिया, वह चुप रही। निमाई ने देखा कि शान्ति किसी तरह मन का भाव न बतायेगी। शान्ति मन की बात बताना पसन्द भी नहीं करती, यह जानती हुई भी निमाई ने बात का ढर्रा उठाया, बोली—"बता तो भाभी! यह कन्या कैसी है?"

शान्ति ने कहा—"लड़की कहाँ पायी—तेरे लड़की कब हुई रे?"

निमाई—"तुम मरो, यम के घर को जाओ, यह तो दादा की लड़की है।"

निमाई ने शान्ति को जलाने के लिये यह बात कही न थी, "दादा की लड़की" माने यह कि उसने भाई के पास से यह लड़की पाई है। लेकिन शान्ति ने यह न समझा। उसने समझा कि निमाई उसे चिढ़ाने के लिये कह रही है। अतएव शान्ति ने उत्तर दिया—"मैं लड़की के बाप की बात नहीं पूछती हूँ, मैं यह पूछती हूँ, कि इस लड़की की मा कौन है?"

निमाई उचित दण्ड पाकर अप्रतिभ होकर बोली—"कौन जाने किसकी लड़की है, भाई, दादा क्या जाने कहाँ से पकड़कर उठा लाये हैं, पूछने का भी अवसर न मिला। आजकल अकाल के दिनों में कितने लोग लड़के-बच्चे फेंक जाते हैं। मेरे ही पास कितने अपनी सन्तान बेचने के लिये आये थे। लेकिन दूसरों के बाल-बच्चों को ले कौन?" (फिर उन आँखों में वैसे ही जल आया और निमाई ने उसे पोंछ डाला) "लड़की है बड़ी सुन्दर, भोली-भाली, गोरी चिट्टी देखकर दादा से मैंने माँग ली है।"

इसके बाद शान्ति की निमाई के साथ अनेक तरह की बातें होने लगीं। इसके बाद निमाई के स्वामी को घर लौट आते देख शान्ति उठकर अपनी कुटी में चली गयी। कुटी में पहुँच कर

उसने अपना दरवाजा बन्द कर लिया। इसके बाद चूल्हे की जितनी राखी वह बटोर सकी, उसने बटोर ली। अवशिष्ट राख के ऊपर जो अपने खाने के लिये उसने चावल पकाकर रखे थे, उन्हें भी उसने फेंक दिया। इसके उपरान्त बहुत देर तक सोच में पड़ी रही और फिर आप-ही-आप बोली—"इतने दिनों से जो सोच रखा था, आज वही करूँगी। जिस आशा से इतने दिनों तक नहीं किया, वह आज सफल हुआ। सफल क्यों निष्फल-निष्फल। यह जीवन ही निष्फल है। जो स्थिर किया है—वही करूँगी। एक बार में जो प्रायश्चित है, वही सौ बार में भी है।"

यही सोचती हुई शान्ति ने भात चूल्हे में फेंक दिया। जंगल में से कन्द मूल फल ले आई। अन्न के बदले उन्हीं को खाकर उसने अपना पेट भर लिया। इसके बाद उसने वही ढाका साड़ी निकाली जिस पर निमाई का इतना झोंक था। उसने उसका किनारा फाड़ डाला और शेष कपड़े को गेरू के रंग में रंग दिया। वस्त्र को रंगते और सुखाते उसे शाम हो गई। शाम हो जाने पर दरवाजा बन्द कर शान्ति बड़े तमाशे में लग गयी। माथे के आजानुलम्बित केशों का कुछ अंश उसने कैंची से काट डाला और अलग रख दिया। बाकी बचे बालों की जटायें तैयार कर लीं। सूखे लम्बे केश जटा रूप में विचित्र जान पड़ते थे। इसके बाद ही रंगे हुए उस कपड़े को उसने दो भागों में विभक्त कर दिया। एक तो उसने पहन लिया और दूसरे से उसने अपने ऊपरी अंगों को आच्छादित किया। इसके बाद ही उसने बहुत दिनों से काम में न लाया गया शीशा निकाला और उसमें अपना रूप देखा। रूप देखते हुई उसने कहा—"हाय! क्या करने को क्या कर रही हूँ?" इसके बाद ही दुःखी हृदय से वह अपने

उन काटे हुए बालों को लेकर मूँछ और दाढ़ी बनाने लगी। लेकिन उन्हें वह पहन न सकी। उसने सोचा—"छिः! छिः! यह क्या? अभी क्या इसकी उम्र है? फिर भी बुड्ढे को चरका देने के लिये इन्हें रख लेना अच्छा है।" यह सोचकर उसने उन्हें छिपाकर अपने पास रख लिया। इसके बाद ही घर में से एक बड़ा हरिणचर्म निकालकर उसने गले के पास उसे पहन कर गाँठ दी और घुमाकर शरीर आवृत कर जंघों तक लटका लिया। इस तरह सज्जित होने के बाद इस नये संन्यासी ने घर में एक बार चारो तरफ देखा। आधी रात हो जाने पर शान्ति ने इस प्रकार संन्यासी वेश में दरवाजा खोलकर अन्धकार पूर्ण गम्भीर वन में प्रवेश किया। वनदेवियों ने उस एकान्त रात में अपूर्व गायन सुना—

राग बागेश्वरी-ताल आड़ा

(बंगला यथावत्)

(१)

"दर उड़ि घोड़ा चढ़ि कोथा तुमी जाउ रे,
समरे चलितू आमि हामे ना फिराउ रे।
हरि हरि हरि हरि बोली रण रंगे,
झाँप दिबो प्राण आजि समर तरंगे,
तुमि कार के तोमार केतो एसो संगे,
रमणीते नाहिं साध, रणजय गाउ रे।"

(२)

पाये धरी प्राणनाथ आमा छेड़े जेऊ ना,
एई! सुनो बाजे घन रणजय बाजना।

नापिछे तुरंग मोर रण करे कामना,
उड़िलो आमार मन घरे आर रबे ना,
रमणी ते नाहिं साध, रणजय गाउ रे।"

तीसरा परिच्छेद।

दूसरे दिन आनन्दमठ के अन्दर एक एकान्त कमरे में बैठे निरुत्साह तीन सन्तान नायक आपस में बातें कर रहे थे। जीवानन्द ने सत्यानन्द से पूछा—"महाराज! देवता हम लोगों पर इतने अप्रसन्न क्यों हैं? किस दोष से हमलोग मुसलमानों से पराभूत हुए?"

सत्यानन्द ने कहा—"भगवान् अप्रसन्न नहीं हैं। युद्ध में जय-पराजय दोनों हैं। उस दिन हम लोगों की विजय हुई थी, आज पराजय हुई है, अन्त में फिर जय ही जय है। हमें निश्चित भरोसा है कि जिन्होंने इतने दिनों तक हमारी रक्षा की है, वह शंख चक्र गदाधारी बनमाली फिर हमारी रक्षा करेंगे। उनके पदस्पर्श कर हमलोग जिस महाव्रत से व्रती हुए हैं, अवश्य ही उस व्रत की हमलोगों को साधना करनी होगी। विमुख होने से हमें अनन्त नरक का भोग करना पड़ेगा. हम अपने भावी मंगल के बारे में निःस्सन्देह हैं। लेकिन जैसे देव-अनुग्रह के अतिरिक्त कोई काम सिद्ध हो नहीं सकता, वैसे ही पुरुषार्थ की भी आवश्यकता होती है। हमलोग जो पराजित हुए, उसका कारण था कि हम निःशस्त्र थे। गोली, बन्दूक के सामने, लाठी, तलवार,

भाला क्या कर सकता है ? अतः हमलोग अपने पुरुषार्थ के न होने से हारे हैं। अब हमारा यही कर्तव्य है, कि हमें भी अस्त्रों की कमी न हो।"

जीवा०—यह तो बहुत ही कठिन बात है।

सत्या०—कठिन बात है, जीवानन्द ? सन्तान होकर तुम मुँह से ऐसी बात निकालते हो ? सन्तानों के लिए कठिन है क्या ?

जीवा०—आज्ञा दीजिये, इनका संग्रह किस प्रकार होगा ?

सत्या०—संग्रह के लिये आज रात में यात्रा करूँगा। जबतक मैं लौटकर न आऊँ, तब तक तुम लोग किसी भारी काम में हाथ न डालना। लेकिन सन्तानों की आपस की एकता की रक्षा करना। उनके भोजन-वस्त्र की व्यवस्था करना। इसका भार तुम दोनों पर ही है।

भवानन्द ने पूछा—तीर्थयात्रा कर इन चीजों का संग्रह आप कैसे करेंगे ? गोला-गोली, बन्दूक, तोप खरीदकर भेजवाने में बड़ा गोलमाल होगा। फिर, इतना आप पायेंगे ही कहाँ, बेचेगा ही कौन, ले ही कौन आयेगा ?"

सत्या०—यह सब चीजें खरीदकर लाई जा नहीं सकतीं। मैं कारीगर भेजूँगा, यहीं तैयार करानी होंगी।

जीवा०—क्या यहीं, इसी आनन्द-मठ में ?

सत्या०—यह कैसे हो सकता है ? इसके उपाय की चिन्ता मैं बहुत दिनों से कर रहा हूँ। भगवान् ने अब उसका सुयोग उपस्थित कर दिया है। तुम लोग कहते थे, भगवान् प्रतिकूल हैं, लेकिन मैं देखता हूँ कि भगवान् अनुकूल हैं।

भवा०—कहाँ कारखाना खोलेंगे ?

सत्या०—पदचिह्न में।

जीवा०—यह कैसे ? वहाँ कैसे होगा ?

सत्या०—नहीं तो महेन्द्रसिंह का मैंने किस लिये व्रत ग्रहण करने को इतना तैयार किया है ?

भवा०—महेन्द्र ने क्या व्रत ग्रहण कर लिया है ?

सत्या०—व्रत ग्रहण नहीं किया है, लेकिन आज ही रात में उसे दीक्षित करूँगा।

जीवा०—कैसे ? महेन्द्र को व्रत ग्रहण करने के लिये क्या उपाय हुआ है ? हमलोग नहीं जानते। उसकी स्त्री-कन्या का क्या हुआ ? उन्हें कहाँ रखा गया ? आज नदी किनारे मैंने एक कन्या पाई थी, उसे मैंने अपनी बहन के पास पहुँचा दिया है। उस कन्या के पास एक सुन्दर स्त्री मरी हुई पड़ी थी। वही तो महेन्द्र की स्त्री-कन्या नहीं थी ? मुझे ऐसा ही भ्रम हुआ था।

सत्या०—वही महेन्द्र की स्त्री-कन्या थी।

भवानन्द चमक उठे। अब वह समझ गये कि जिस स्त्री को उन्होंने पुनर्जीवित किया है, वही महेन्द्र की स्त्री कल्याणी है। लेकिन उसकी कोई बात इस समय उठाना उन्होंने उचित न समझा।

जीवानन्द ने पूछा—"महेन्द्र की स्त्री मरी कैसे ?

सत्या०—जहर खाकर।

जीवा०—जहर क्यों खाया ?

सत्या०—भगवान ने उसे स्वप्न में प्राण त्याग करने का आदेश किया था।

भवा०—वह स्वप्नादेश क्या सन्तानों के कार्योद्धार के लिये ही हुआ था ?

सत्या०—महेन्द्र से मैंने ऐसा ही सुना है। अब सन्ध्या

समय उपस्थित है, मैं संध्यादि कृत्य के लिये जाता हूँ। इसके बाद नये सन्तानों के दीक्षा की व्यवस्था करूँगा।

भवा०—सन्तानों के? क्या महेन्द्र के अतिरिक्त और भी कोई सन्तान-सम्प्रदाय में सम्मिलित हुआ चाहता है?

सत्या०—हाँ, एक और नया आदमी है। अब से पहले मैंने उसे कभी देखा नहीं था। आज ही मेरे पास आया है। वह बहुत तरुण युवा पुरुष है। उसकी भाव भंगी और बातों से मैं बहुत प्रसन्न हूँ, खरा सोना जान पड़ता है वह। उसके सन्तान कार्य की शिक्षा का भार जीवानन्द पर है। जीवानन्द लोगों का चित्त आकर्षण कर लेने में बहुत पटु है। अब मैं जाऊँगा। तुम लोगों के प्रति मेरा एक उपदेश बाकी है। बहुत ही मन लगाकर उसे सुनो।

दोनों ही शिष्यों ने करबद्ध हो निवेदन किया—"आज्ञा दीजिये।"

सत्यानन्द ने कहा—"तुम दोनों से यदि कोई अपराध हुआ हो, या आगे करो, तो मेरे वापस आ जाने के पहले प्रायश्चित्त न करना। मेरे आ जाने पर अवश्य ही प्रायश्चित्त करना होगा।"

यह कहकर सत्यानन्द स्वामी अपने स्थान पर चले गये। भवानन्द और जीवानन्द ने एक दूसरे का मुँह ताका।

भवानन्द ने पूछा—"तुम्हारे ऊपर इशारा है क्या?

जीवा०—जान तो पड़ता है। बहन के मकान पर कन्या पहुँचाने गया था।

भवा०—इसमें क्या दोष है? यह तो निषिद्ध नहीं है। ब्राह्मणी के साथ मुलाकात तो नहीं की है?

जीवा०—जान पड़ता है, गुरुदेव ऐसा ही समझते हैं।

चौथा परिच्छेद।

सायंकृत्य समाप्त करने के उपरान्त सत्यानन्द स्वामी ने महेन्द्र को बुलाकर कहा—"तुम्हारी कन्या जीवित है।"

महे०—कहाँ है, महाराज?

सत्या०—तुम मुझे महाराज क्यों कहते हो?

महे०—सब यही कहते हैं, इसीलिये। मठ के अधिकारियों को भी राजा शब्द से सम्बोधित किया जाता है। मेरी कन्या है, महाराज?

सत्या०—इसे सुनने के पहले एक बात का ठीक उत्तर दो। तुम सन्तान धर्म ग्रहण करोगे?

महे०—इसे मैंने मन-ही-मन निश्चित कर लिया है।

सत्या०—तब कन्या कहाँ है, सुनने की इच्छा न करो।

महे०—क्यों महाराज?

सत्या०—जो यह व्रत ग्रहण करता है, उसे अपनी स्त्री, पुत्र, कन्या, स्वजनों से किसी से भी सम्बन्ध रखना नहीं पड़ता। स्त्री, पुत्र, कन्या का मुँह देखने से भी प्रायश्चित्त होता है। जब तक सन्तान की मनःकामना सिद्ध न हो, तब तक तुम कन्या का मुँह देख न सकोगे। अतएव यदि सन्तानधर्म ग्रहण करना स्थिर हो, तो कन्या का पता पूछकर क्या करोगे? देख तो पाओगे नहीं।

महे०—यह कठिन नियम क्यों, प्रभु?

सत्या०—सन्तानों का काम बहुत ही कठिन है। जो सर्व-त्यागी है उसके अतिरिक्त यह काम और किसी के लिये उपयुक्त नहीं है। मायारज्जु से जिसका चित् बँधा रहता है, खूटें में बँधी घोड़ी की तरह वह कभी स्वर्ग में उठ नहीं सकता।

महे०—महाराज! बात मैंने मजे में समझी नहीं। जो स्त्री-पुत्र का मुँह देखता है, वह क्या किसी गुरुतर कार्य का अधिकारी नहीं हो सकता ?

सत्या०—पुत्र-कलत्र का मुँह देखने से हम देवकार्य भूल जाते हैं। सन्तानधर्म का नियम यही है कि जिस दिन प्रयोजन उपस्थित होगा, उसी दिन प्राण बिसर्जन करना पड़ेगा। कन्या का चेहरा याद आते ही क्या तुम मर सकोगे ?

महे०—तो क्या न देखने से ही कन्या को भूल जाऊँगा ?

सत्या०—यदि न भूल सको, तो यह व्रत ग्रहण न करो।

महे०—समस्त सन्तानों ने क्या इसी तरह पुत्र-कलत्र को भूलकर ही व्रत ग्रहण किया है ? ऐसी दशा में तो सन्तान संख्या में अति अल्प हैं।

सत्या०—सन्तान दो तरह के हैं, दीक्षित और अदीक्षित। जो अदीक्षित हैं, वह या तो संसारी हैं, या भिखारी। वह लोग केवल युद्ध के समय आकर उपस्थित हो जाते हैं। लूट का हिस्सा या पुरस्कार पाकर फिर चले जाते हैं। जो दीक्षित हैं, वह सर्वस्व त्यागी हैं। वही लोग सम्प्रदाय के कर्त्ता हैं। तुम्हें मैं अदीक्षित सन्तान होने का अनुरोध न करूँगा। युद्ध के समय लाठी-लकड़ी वाले अनेक लोग हैं। बिना दीक्षित हुए तुम सम्प्रदाय के किसी गुरुतर कार्य के अधिकारी हो नहीं सकते।

महे०—दीक्षा क्या है ? दीक्षित क्यों होना होगा ? मैं तो अब से पहले ही मन्त्र ग्रहण कर चुका हूँ।

सत्या०—उस मन्त्र का त्याग करना होगा। मुझसे फिर से मन्त्र ग्रहण करना होगा।

महे०—मन्त्र त्याग करूँगा कैसे ?

सत्या०—मैं वह पद्धति बता देता हूँ।

महे०—नया मन्त्र क्यों लेना होगा ?

सत्या०—सन्तानगण वैष्णव हैं।

महे०—यह समझ नहीं पाता हूँ। सन्तान वैष्णव कैसे हैं ? वैष्णवों का तो अहिंसा ही परमधर्म होता है।

सत्या०—वह चैतन्यदेव का वैष्णवधर्म है। नास्तिक बौद्ध धर्म के अनुकरण से जो वैष्णवता उत्पन्न हुई थी, वह उसी का लक्षण है। प्रकृत वैष्णवधर्म का लक्षण दुष्टों का दमन, धरित्री का उद्धार है। कारण, भगवान् विष्णु ही संसार के पालक हैं। उन्होंने दश बार शरीर धारण कर पृथिवी का उद्धार किया था। केशी, हिरण्यकशिपु, मधुकैटभ, पुर, नरक आदि दैत्यों को, रावणादि राक्षसों को तथा शिशुपाल आदि का ध्वंस उन्होंने किया है। वही जेता, जयदाता, पृथिवी के उद्धारकर्ता और सन्तानों के इष्ट देवता हैं। चैतन्यदेव का वैष्णवधर्म वास्तविक वैष्णवधर्म नहीं है। वह धर्म अधूरा है। चैतन्यदेव के विष्णु प्रेममय हैं—लेकिन भगवान् केवल प्रेममय ही नहीं हैं वह अनन्त शक्तिमय हैं। चैतन्यदेव के विष्णु केवल प्रेममय हैं, सन्तानों के विष्णु केवल शक्तिमय हैं। हम दोनों ही वैष्णव हैं—लेकिन दोनों ही अधूरे हैं। बात समझ गये ?

महे०—नहीं। यह तो कैसी नयी-नयी-सी बातें हैं। कासिम बाजार में एक पादरी के साथ मेरी मुलाकात हुई थी। उसने भी कुछ ऐसी ही बातें कहीं थीं। अर्थात् ईश्वर प्रेममय है—तुमलोग यीशु से प्रेम करो—यह ऐसी ही बातें हैं।

सत्या०—जिस तरह की बातों से हमारे चौदह पुरखे समझते आते हैं—उसी तरह की बातों से हम तुम्हें समझा रहे हैं। ईश्वर त्रिगुणात्मक हैं—यह सुना है ?

महे०—हाँ, सत्व, रजः, तमः—यही तीन गुण हैं।

सत्या०—ठीक। इन तीनों गुणों की पृथक्-पृथक् उपासना है। उनके सत्व से दया दाक्षिण्य आदि की उत्पत्ति है। वह अपनी उपासना भक्ति द्वारा करते हैं। चैतन्य सम्प्रदाय यही करता है। रजोगुण से उनकी शक्ति की उत्पत्ति है, इसकी उपासना युद्ध द्वारा—देवद्वेषीगण के निधन द्वारा होती है—वही हम करते हैं। और तमोगुण से ही भगवान अपनी साकार विविध चतुर्भुज आदि मूर्त्ति धारण करते हैं। स्रक-चन्दनादि उपहार द्वारा उस गुण की पूजा होती है—सर्वसाधारण वही करते हैं। अब समझे?

महे०—समझ गया। सन्तानगण उपासक सम्प्रदाय मात्र है।

सत्या०—ठीक है। हमलोग राज्य नहीं चाहते—केवल मुसलमान भगवान् के विद्वेषी हैं—इसलिये उनका सवंश निपात करना चाहते हैं।

पाचवाँ परिच्छेद।

सत्यानन्द ने बातचीत समाप्त कर महेन्द्र के साथ उठकर उस मठस्थि देवालय स्थान में, जहाँ प्रकाण्ड आकार की भगवान् विष्णु की मूर्त्ति विराजित थी, वहीं पहुँचे। उस समय वहाँ अपूर्व शोभा थी। रजत, स्वर्ण और रत्नरंजित प्रदीपों से मन्दिर आलोकित हो रहा था। राशि-राशि पुष्पों की शोभा से मन्दिर और देवमूर्त्ति शोभित थी। सुगन्धित मधुर धूम्रराशि से कक्ष

वस्तुतः देवसान्निध्य का प्रमाण उपस्थित कर रहा था। मन्दिर में एक और पुरुष बैठा हुआ, "हरे मुरारे" स्तव पाठ कर रहा था। सत्यानन्द के वहाँ पहुँचते ही उसने उठकर उन्हें प्रणाम किया। ब्रह्मचारी ने पूछा—"तुम दीक्षित होगे ?"

उसने कहा—"मुझ पर कृपा कीजिये।"

इस पर स्वामीजी ने महेन्द्र और उसे दोनों को सम्बोधन कर कहा—"तुम लोग यथाविधि स्नान कर, संयत और अनशन पूर्वक तो हो ?"

उत्तर—हैं।

सत्या०—तुम लोग इन भगवान के सामने प्रतिज्ञा करो, सन्तानधर्म के सारे नियमों का पालन करोगे ?

दोनो—करूँगा।

सत्या०—जितने दिनों तक माता का उद्धार न हो, उतने दिनों तक गृहधर्म परित्याग किये रहोगे ?

दोनो—करूँगा।

सत्या०—माता-पिता का त्याग करोगे ?

दोनो—करूँगा।

सत्या०—भ्राता-भगिनी ?

दोनो—त्याग करूँगा।

सत्या०—दारा-सुत ?

दोनो—त्याग करूँगा।

सत्या०—आत्मीय-स्वजन ? दास-दासी ?

दोनो—इन सबका त्याग किया।

सत्या०—धन-सम्पद्-भोग ?

दोनो—सबका परित्याग।

सत्या०—इन्द्रियजयी होगे ? नारियों के साथ कभी एक आसन पर न बैठोगे ?

दोनो—न बैठेंगे, इन्द्रियवश में रखेंगे।

सत्या०—भगवान् के सामने प्रतिज्ञा करो, अपने लिये या अपने स्वजनों के लिये अर्थोपार्जन करोगे ? जो कुछ उपार्जन करोगे, उसे वैष्णव धनागार को अर्पित कर दोगे ?

दोनो—देंगे।

सत्या०—सनातनधर्म के लिये स्वयं अस्त्र पकड़कर युद्ध करोगे।

दोनो—करेंगे।

सत्या०—रण में कभी पीठ न दिखाओगे ?

दोनो—नहीं।

सत्या०—यदि प्रतिज्ञा भङ्ग हो ?

दोनो—जलती चिता में प्रवेश कर अथवा विषपान कर प्राण त्याग देंगे।

सत्या०—और एक बात है, और वह जाति। तुम किस जाति के हो ? महेन्द्र तो कायस्थ हैं। तुम्हारी जाति ?

दूसरे व्यक्ति ने कहा—"मैं ब्राह्मणकुमार हूँ।"

सत्या०—ठीक। तुमलोग जाति-त्याग कर सकोगे ? समस्त सन्तान एक जाति हैं। इस महाव्रत में ब्राह्मण-शूद्र का विचार नहीं है। तुमलोगों का क्या मत है ?

दोनो—हमलोग भी जाति का खयाल न करेंगे। हम सब माता की सन्तान एक जाति के हैं।

सत्या०—अब मैं तुमलोगों को दीक्षित करूँगा। तुमलोगों ने जो प्रतिज्ञा की है, उसे भङ्ग न करना। भगवान् पुरारि स्वयं इसके साक्षी हैं। जिन्होंने रावण, कंस, हिरण्यकशिपु, जरासन्ध,

शिशुपाल आदि के विनाश-हेतु हैं, जो सर्वान्तर्यामी हैं, सर्वजयी हैं, सर्वशक्तिमान हैं, और सर्वनियन्ता हैं, जो इन्द्र के वज्र को भी बिल्ली के नाखूनों के समान समझते हैं, वही प्रतिज्ञाभंगकारी को विनष्ट कर अनन्त नरकवास देंगे।

दोनों—तथास्तु।

सत्या०—तुम लोग गाओ—"वन्देमातरम्।"

दोनों ने मिलकर एकान्त मन्दिर में भक्ति-भाव पूर्वक मातृ-गीत का गान किया। इसके बाद ब्रह्मचारी ने उन्हें यथाविधि दीक्षित किया।

छठाँ परिच्छेद।

दीक्षा समाप्त होने के बाद सत्यानन्द महेन्द्र को एक बहुत ही एकान्त स्थान में ले गये। दोनों के वहाँ बैठने के बाद सत्यानन्द ने कहना आरम्भ किया—"वत्स! तुमने जो यह महाव्रत ग्रहण किया है, इससे मुझे जान पड़ता है कि भगवान् सन्तानों पर सदय हैं। तुम्हारे द्वारा माता का महत् कार्य अनुष्ठित होगा। तुम ध्यान पूर्वक मेरी बातें सुनो। तुम्हें जीवानन्द, भवानन्द के साथ बन-बन घूमकर युद्ध करना नहीं पड़ेगा। तुम पदचिह्न में वापस लौट जाओ। स्वधाम में रहकर ही तुम्हें सन्तानधर्म का पालन करना होगा।"

यह सुनकर महेन्द्र विस्मित और विमर्ष हुए। लेकिन कुछ बोले नहीं। ब्रह्मचारी कहने लगे—"इस समय हमलोगों के पास

आश्रय नहीं है। ऐसा स्थान नहीं है कि यदि प्रबल सेना आकर अवरोध पूर्वक आक्रमण करे, तो हमलोग खाद्यादि के साथ फाटक बन्दकर कुछ दिनों तक युद्ध कर सकें। हमलोगों के पास गढ़ नहीं है। वहाँ अट्टालिका तुम्हारी है, गाँव भी तुम्हारे अधिकार में है। मेरी इच्छा है कि वहाँ एक गढ़ तैयार हो। परिखा प्राचीन द्वारा पदचिह्न को घेर देने से, उसमें घाटी, खन्दक आदि युद्धोपयोगी किलेबन्दी कर देने से और जगह-जगह तोपें लगा देने से बहुत ही उत्तम गढ़ तैयार हो सकता है। तुम घर जाकर रहो, क्रमशः दो हजार सन्तान वहाँ जाकर उपस्थित होंगे। उन लोगों के द्वारा घाटी, खन्दक, प्राचीर, तैयार कराते रहो। वहाँ तुम्हें एक लौह-कक्ष बनवाना होगा, वही सन्तानों का अर्थ भण्डार होगा। एक-एक कर सोने से भरे हुए सन्दूक तुम्हारे पास भेजवाऊँगा। तुम उसी धनराशि से यह सब तैयार कराओ। मैं विदेश जाता हूँ। वहाँ से उत्तम कारीगर भेजूँगा। उनके आजाने पर तुम पदचिह्न में कारखाना स्थापित करो। वहाँ, तोपें, गोले, बारूद, बन्दूक, इनका निर्माण कराओ। इसीलिये मैं तुम्हें घर जाने को कहता हूँ।

महेन्द्र ने स्वीकार कर लिया।

सातवाँ परिच्छेद ।

महेन्द्र के पैर छूकर विदा होने पर, उनके संग, उस दिन जो दूसरा शिष्य दीक्षित हुआ था, उसने आकर सत्यानन्द को प्रणाम किया। सत्यानन्द ने उसे आशीर्वाद देकर आसन पर बैठाया। इधर-उधर की मीठी बातें होने के बाद स्वामीजी ने कहा—"क्यों? भगवान कृष्ण में तुम्हारी प्रगाढ़ भक्ति है या नहीं?"

शिष्य ने कहा—"कैसे बताऊँ? मैं जिसे भक्ति समझता हूँ, शायद वह भँड़ैती या आत्म प्रसारणा हो।"

सत्यानन्द ने सन्तुष्ट होकर कहा—"ठीक है, जिससे दिन-प्रति-दिन भक्ति का विकास हो, ऐसी ही कोशिश करना। मैं आशीर्वाद देता हूँ, तुम्हारा दल सफल हो। कारण, तुम अभी उम्र में बहुत नवीन हो। वत्स! तुम्हें क्या कहकर बुलाऊँ, अब तक मैंने पूछा नहीं।"

नव सन्तान ने कहा—"आपकी जो अभिरुचि हो। मैं तो वैष्णवों का दासानुदास हूँ।"

सत्या०—तुम्हारी नई उम्र देखकर तुम्हें नवीनानन्द बुलाने की इच्छा होती है, अतः तुम अपना यही नाम रखो। लेकिन एक बात पूछता हूँ, तुम्हारा पहले क्या नाम था? यदि बताने में कोई बाधा हो, तब भी बता देना। मुझसे कहने पर बात दूसरे कान में न पहुँचेगी। सन्तानधर्म का मर्म यही है कि जो अवाच्य भी हो, उसे गुरु से कह देना चाहिये। कहने में कोई हानि न होगी।

शिष्य—मेरा नाम शान्तिराम देव शर्मा है।

सत्या०—तुम्हारा नाम शान्तिमणि पापिष्ठा है।

यह कहकर सत्यानन्दन ने शिष्य की काली-काली डेढ़ हाथ लम्बी दाढ़ी को बाँए हाथ से पकड़कर खींच लिया। नकली दाढ़ी अलग हो गयी। सत्यानन्द ने कहा—"छिः बेटी! मेरे साथ प्रतारणा—और मुझे ही ठगना था, तो इस उम्र में डेढ़ हाथ की दाढ़ी क्यों? और दाढ़ी तो दाढ़ी, यह कण्ठ का स्वर—यह आखों की कोमल दृष्टि छिपा सकती हो? यदि ऐसा ही निर्बोध होता, तो क्या इतने बड़े काम में कभी हाथ डालता?"

बेशर्म शान्ति कुछ देर तक अपनी आखों को हाथ से ढाँके बैठी रही। इसके बाद ही उसने हाथ हटाकर वृद्ध पर लोलकटाक्ष स्थापित कर कहा—"प्रभु! तो इसमें दोष ही क्या है? स्त्री के बाहुओं में क्या बल नहीं रहता?"

सत्या०—गोष्पद में जितना जल होता है।

शान्ति०—सन्तानों के बाहुबल की परीक्षा कभी आपने ली है?

सत्या०—ली है

यह कहकर सत्यानन्द एक इस्पात का धनुष, और लोहे का थोड़ा तार ले आये। उसे शान्ति को देते हुए उन्होंने कहा—"इसी इस्पात के धनुष पर इस लोहे के तार की डोरी चढ़ानी होगी। प्रत्यंचा का परिमाण दो हाथ है। डोरी चढ़ाते-चढ़ाते धनुष सीधा हो जाता है और चढ़ानेवाले को दूर फेंक देता है। जो इसे चढ़ा सकता है, वही प्रकृत बलवान् है।"

शान्ति ने धनुष और तार को अच्छी तरह देखकर पूछा—"सभी सन्तान क्या इस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए हैं?"

सत्या०—नहीं, इसके द्वारा केवल उन लोगों के बल की थाह लेली है।

शान्ति—क्या कोई भी इस परीक्षा में उत्तीर्ण हो नहीं सका?

सत्या०—केवल चार व्यक्ति।

शान्ति—क्या मैं पूछ सकती हूँ कि वह कौन-कौन हैं?

सत्या०—हाँ, कोई निषेध नहीं है। एक तो मैं स्वयं हूँ।

शान्ति—और?

सत्या०—जीवानन्द, भवानन्द, और ज्ञानानन्द।

शान्ति ने धनुष लिया और तार लिया, एक झटके में उस पर प्रत्यंचा चढ़ाकर उसने धनुष सत्यानन्द के पैरों पर फेंक दिया।

सत्यानन्द—विस्मित, मन और स्तम्भित हुए खड़े रह गये। कुछ देर बाद बोले—"यह क्या? तुम देवी हो या मानवी?"

शान्ति ने हाथ जोड़ कर कहा—"मैं सामान्य मानवी हूँ, लेकिन ब्रह्मचारिणी हूँ।

सत्या०—इससे क्या हुआ? तुम क्या बाल-विधवा हो? नहीं, लेकिन बाल-विधवा में भी इतना बल नहीं होता, वह एकाहारी होती हैं।

शान्ति—मैं सधवा हूँ।

सत्या०—तो क्या तुम्हारे स्वामी का पता नहीं है—निरुद्दिष्ट हैं?

शान्ति—नहीं, उनका पता है, उन्हीं के उद्देश से आई हूँ।

मेघ हटकर सहसा निकल आनेवाली धूप की तरह सत्यानन्द की स्मृति जाग पड़ी। उन्होंने कहा—"याद आ गया। जीवानन्द की स्त्री का नाम शान्ति है। तुम क्या जीवानन्द की ब्राह्मणी हो?"

अब शान्ति शर्मा गयी। उसने अपनी जटा से मुँह ढाँक लिया, मानों कितने ही हाथियों के झुण्ड पद्म पर पहुँच गये हों।

सत्यानन्द ने पूछा—"क्यों यह पापाचार करने आई ?"

सहसा शान्ति ने चेहरे पर जटाएँ हटाते हुए कहा—"इसमें पापाचरण क्या है, प्रभु ! पत्नी से पति का अनुसरण करे, तो यह पापाचरण कैसे है ? सन्तानधर्म शास्त्र में यदि इसे पापाचार कहते हैं, तो सन्तानधर्म अधर्म है। मैं उनकी सहधर्मिणी हूँ। वह धर्माचरण में प्रवृत्त हैं, मैं भी उनके साथ धर्माचरण के लिये ही आई हूँ।

शान्ति की तेजस्विनी वाणी सुनकर, उन्नत ग्रीव, स्फीत वक्ष, कम्पित अधर तथा उज्ज्वल अथच अश्रुप्लुत चक्षु देखकर सत्यानन्द बहुत प्रसन्न हुए। बोले—"तुम साध्वी हो, लेकिन देखो, बेटी ! पत्नी केवल गृहधर्म में ही सहधर्मिणी होती है—वीर धर्म में रमणी कैसी ?"

शान्ति—कौन अपत्नीक होकर आजतक महावीर हो सका है ? सीता के न रहते क्या राम वीर हो सकते ? अर्जुन के कितने विवाह हुए थे, जरा गिनिये तो ? भीम को जितना बल था, उतनी ही क्या उनकी पत्नी नहीं थीं ? कितना गिनाऊँ ? फिर, क्या आपको बताने की जरूरत है ?

सत्या०—बात ठीक है, लेकिन रणक्षेत्र में कौन वीर पत्नी को संग लेते हैं ?

शान्ति—अर्जुन ने जब दानवी सेना के साथ अन्तरिक्ष से युद्ध किया था, तो उनके रथ को कौन चला रहा था ? द्रौपदी के संग न रहते क्या पाण्डव कभी कुरुक्षेत्र में जूझ सकते थे ?

सत्या०—वह हो, लेकिन सामान्य मनुष्यों का हृदय स्त्रियों में आसक्त रहता है और वही उन्हें कार्य से विरत करता है। इसीलिये सन्तानों का यह व्रत है कि वह कभी स्त्री के साथ एकासन पर न बैठेंगे। जीवानन्द मेरा दाहना हाथ है। क्या

तुम मेरा दाहना हाथ काट देने के लिये आई हो ?

शान्ति—मैं आपके दाहने हाथ में बल बढ़ाने के लिये आई हूँ। मैं ब्रह्मचारिणी हूँ, और प्रभु के समीप ब्रह्मचारिणी ही रहूँगी। मैं केवल धर्माचरण के लिये आई हूँ। स्वामि दर्शन के लिये नहीं, विरह यन्त्रणा से मैं कातर नहीं हूँ। पतिदेव ने जो धर्म ग्रहण किया है, मैं उसकी भागिनी क्यों न बनूं ? इसीलिये आई हूँ।

सत्या०—अच्छा, तो कुछ दिन तुम्हारी प्रतीक्षा करके देखूँगा।

शान्ति बोली—क्या मैं आनन्द-मठ में रह सकूँगी ?

सत्या०—आज और कहाँ जाओगी ?

शान्ति०—इसके बाद ?

सत्या०—माँ भवानी की तरह तुम्हारे ललाट पर अग्नि तेज है, सन्तान सम्प्रदाय को क्यों भस्म करोगी ?

इसके बाद आशीर्वाद देकर सत्यानन्द ने शान्ति को विदा किया।

शान्ति मन-ही-मन बोली—"रहो, बूढ़े भगवान्! मेरे कपाल में आग है। मैं मुँहजली हूँ कि तेरी दादी मुँहजली है ?"

वस्तुतः सत्यानन्द का वह अभिप्राय नहीं था—आखों के विद्युत् प्रकाश से ही उनका मतलब था, लेकिन यह बात क्या बुड्ढों को युवतियों से कहना चाहिये ?

आठवाँ परिच्छेद।

उस रात शान्ति का मठ में रहने की अनुमति मिली थी, इसलिये वह कमरा खोजने लगी। अनेक कमरे खाली पड़े हुए हैं। गोवर्द्धन नाम का एक परिचारक है—वह भी छोटी तरह का सन्तान है—वह हाथ में प्रदीप लिये हुआ शान्ति को कमरे दिखाने लगा। कोई कमरा शान्ति के पसन्द न आया। हताश होकर गोवर्द्धन शान्ति को सत्यानन्द के पास वापस ले जाने लगा। शान्ति बोली—"भाई, सन्तान! इधर की तरफ जो कई कमरे हैं, उन्हें तो नहीं देखा गया?"

गोवर्द्धन बोला—"वह सब कमरे हैं तो अवश्य बहुत सुन्दर, किन्तु उनमें सन्तान लोग हैं।

शान्ति—उसमें कौन-कौन हैं?

गो०—बड़े-बड़े सेनापति हैं।

शा०—बड़े-बड़े सेनापति कौन हैं?

गो०—भवानन्द, जीवानन्द, धीरानन्द, ज्ञानानन्द। आनन्द-मठ आनन्दमय है।

शान्ति०—चलो न, जरा कमरे देख आयें?

गोवर्द्धन पहले शान्ति को धीरानन्द के कमरे में ले गया। धीरानन्द महाभारत का द्रोणपर्व पढ़ रहे थे। अभिमन्यु ने किस तरह सप्तमहारथियों के साथ युद्ध किया था, इसी में उसका चित्त निविष्ट था—वह कुछ न बोले। शान्ति बिना कुछ बोले-चाले आगे बढ़ गयी।

इसके बाद शान्ति ने भवानन्द के कमरे में प्रवेश किया। उस समय भवानन्द ऊर्ध्वदृष्टि किये किसी चेहरे की याद में तल्लीन थे। किसका चेहरा, यह नहीं जानते, लेकिन चेहरा

बड़ा सुन्दर है, कृष्ण कुंचित सुगन्धित अलकराशि आकर्णप्रसारी भ्रूयुगके ऊपर पड़ी हुई है. मध्य में अनिंद्य त्रिकोण ललाट देश है. उसपर मृत्यु की कराल काल-छाया ग्रहण की तरह जान पड़ती है। मानो वहाँ मृत्यु और मृत्युञ्जय में द्वन्द्व हो रहा हो। नयन मुँदे हुए, भौंहें स्थिर, ओठ नीले, गाल पीले, नाक शीतल, वक्ष उन्नत, वायु कपड़े को हिला रही है। इसके बाद ही जैसे शरन्मेघ में विलुप्त चन्द्रमा क्रमशः मेघदल को अतिक्रम कर अपना सौन्दर्य विकसित करता है, जैसे प्रभात सूर्य तरङ्गाकृति मेघमाला को क्रमशः सुवर्णरंग-रंजित कर स्वयं प्रदीप्त होता है, दिगमण्डल को आलोकित करता है, स्थल, जल, कीट-पतंग सब को प्रफुल्ल करता है, वैसे ही उस शवदेह में जीवानन्दी शोभा का संचार हो रहा था। आह! कैसी अनुपम शोभा थी, भवानन्द यही ध्यान कर रहे थे, अतः उन्होंने भी कोई बात न कही। कल्याणी के रूप से उनका हृदय कातर हो गया था, शान्ति के रूप की तरफ उन्होंने ध्यान न दिया।

इसके उपरान्त शान्ति तीसरे कमरे में गयी। उसने पूछा—"यह किसका कमरा है?"

गोवर्द्धन बोला—"जीवानन्द स्वामी का।"

शान्ति०—यह कौन है? कहाँ, इस कमरे में तो कोई नहीं है?

गोव०—कहीं गये होंगे, अभी आ जायेंगे।

शान्ति०—यह कमरा सब कमरों से उत्तम है।

गोव०—भला, यह कमरा ऐसा न होगा!

शान्ति०—क्यों?

गोव०—जीवानन्द स्वामी इसमें रहते हैं न!

शान्ति०—मैं इसी में रह जाती हूँ, वह कोई दूसरा कमरा खोज लेंगे।

गोव०—भला ऐसा भी हो सकता है ? जो इस कमरे में रहते हैं, उन्हें चाहे मालिक समझिये, या जो चाहे समझिये, जो कहते हैं, वही होता है।

शान्ति०—अच्छा तुम जाओ, मुझे यदि जगह न मिलेगी तो पेड़ के नीचे पड़ रहूँगा।

यह कहकर गोवर्द्धन को विदाकर शान्ति उसी कमरे में घुसी। कमरे में घुसकर शान्ति जीवानन्द का कृष्णाजिम बिछा-कर और दीपक तेजकर उनकी रखी एक किताब पढ़ने लगी।

कुछ देर बाद जीवानन्द उपस्थित हुए। शान्ति का यद्यपि पुरुष वेश था, फिर भी उन्होंने आते ही पहचान लिया, बोले—"यह क्या ? शान्ति !"

शान्ति ने धीरे-धीरे पुस्तक रखकर जीवानन्द के चेहरे की तरफ देखकर कहा—"महाशय ! शान्ति कौन है ?"

जीवानन्द भौंचक्के से रह गये, अन्त में बोले—"शान्ति कौन है ? क्यों, क्या तुम शान्ति नहीं हो ?"

शान्ति घृणा के साथ बोली—"मैं नवीनानन्द स्वामी हूँ।" यह कहकर वह फिर पुस्तक पढ़ने लगी।

जीवानन्द खखाकर हँस पड़े। बोले—"यह नया तमाशा बढ़िया है। अच्छा, श्री श्री नवीनानन्दजी ! क्या सोचकर यहाँ पहुँच गये ?

शान्ति बोली—"भलेआदमियों में रिवाज है कि पहली मुलाकात में, 'आप', 'श्रीमान्' 'महाशय' आदि शब्दों से सम्बोधन करना चाहिये। मैं भी आप से असम्मान-जनक रूप में बातें नहीं करता हूँ। तब आप मुझे 'तुम-तुम' क्यों कहते हैं ?"

"जो आज्ञा" कहकर गले में कपड़ा डालकर हाथ जोड़कर जीवानन्द ने कहा—"अब विनीत भाव से भृत्य का निवेदन है,

कि किस कारण मसईपुर से इस दीन-भवन में महाशय का शुभागमन हुआ है. आज्ञा कीजिये ?"

शान्ति ने अति गम्भीर भाव से कहा—व्यंग की कोई आवश्यकता नहीं है। मैं मसईपुर को पहचानता नहीं। मैं सन्तान-धर्म ग्रहण करने के लिये आज आकर दीक्षित हुआ हूँ।

जीवा०—अरे सर्वनाश! क्या सचमुच ?

शान्ति—सर्वनाश क्यों आप भी तो दीक्षित हैं ?

जीवा०—तुम तो स्त्री हो !

शान्ति—यह कैसे ? ऐसी बात आप ने कैसे सुनी ?

जीवा०—मेरा विश्वास था, कि मेरी ब्राह्मणी स्त्री है।

शान्ति—ब्राह्मणी ? है या नहीं ?

जीवा०—थी तो जरूर।

शान्ति—आपको विश्वास है कि मैं आपकी ब्राह्मणी हूँ ?

जीवानन्द ने फिर गले में कपड़ा डालकर बड़े ही विनीत भाव से कहा—"अवश्य महाशयजी !"

शान्ति—यदि ऐसी मजाक की बात आपके मन में है, तो बताइये तो सही, आपका कर्तव्य क्या है ?

जीवा०—आपके शरीर के कपड़ों को बलपूर्वक हटा देने के बाद अधर सुधापान।

शान्ति—यह आपकी दुष्ट बुद्धि है या मेरे प्रति असाधारण भक्ति का परिचय मात्र है। आपने दीक्षा के अवसर पर शपथ किया है कि स्त्री के साथ एकासन पर कभी न बैठूँगा। यदि

आपका यह विश्वास हो कि मैं स्त्री हूँ ऐसा सर्प-रज्जु-भ्रम अनेक को होता है—तो आप के लिये उचित यही है कि अलग आसन पर बैठें। मुझसे आपको बात भी न करनी चाहिये।

यह कहकर शान्ति ने फिर पुस्तक-पाठ में मन लगाया। अन्त में परास्त होकर जीवानन्द पृथक् शय्या रचना कर लेट गये।

तृतीय खण्ड।

पहला परिच्छेद।

भगवान् की अनुकम्पा से ७६ वें साल का अकाल समाप्त हो गया। बङ्गाल प्रदेश के ६ आना मनुष्यों को नहीं कह सकते कितने कोटि—यमपुर को भेजकर वह दुर्वत्सर स्वयं काल के गाल में समा गया। ७७ वें वर्ष में ईश्वर प्रसन्न हुए। सुवृष्टि हुई, पृथिवी शस्यश्यामला हुई, जो लोग बचे थे, उन्होंने पेट भरकर भोजन किया। अनेक अनाहार या अल्पाहार से बीमार पड़ गये थे, पूरा आहार सह नहीं सके। बहुतेरे इसी में मरे। पृथिवी तो शस्यशालिनी हुई लेकिन जनशून्या हो गयी, गाँव-गाँव में खाली पड़े हुए घर पशुओं की आवास भूमि या प्रेतभय के कारण बन गये। गाँव-गाँव की सैकड़ों बीघे भूमि अनावर्षण के कारण अनुर्वर हो गयी अथवा जंगल में परिणत हो गयी। बंगाल प्रदेश जंगल से भर गया। जहाँ हँसती हुई हरियाली भूमि थी, जहाँ असंख्य गो-महिषों की चरने की भूमि थी, जो गाँव की भूमि युवक-युवतियों की प्रमोद भूमि थी, वह सब महा-अरण्य में परिणत होने लगी। इसी तरह एक वर्ष गया, दो वर्ष गये, तीन वर्ष गये। जंगल बढ़ते ही जाते थे। जो मनुष्यों के सुख के स्थान थे, वहाँ हिंसक शेर आदि पशु आकर हरिणों पर धावा बोलने लगे। 'दल बाँध कर जहाँ सुन्दरियाँ आलता-रंजित

चरणोंसे पाजेब आदि की झनकार करती हुई, वृद्धाओं के साथ व्यंग करती हुई हँसती जाया करती थी, वहीं अब भालुओं ने जीव-जन्तुओं का लालन-पालन शुरू किया है। जहाँ छोटी उम्र के बालक सायंकाल के समय जुटकर फूले हुए पुष्प जैसा हृदय लेकर मनोमोहक हँसी से स्थान गुँजाया करते थे, अब वहीं जंगली हाथी मदमत्त होकर वृक्षों को उखाड़-उखाड़कर फेंकते हैं। जहाँ दुर्गोत्सव होते थे, अब वहाँ शृङ्गालों के विवर हैं। नाट्य मन्दिरों में दिन के समय सर्पराजों की भयंकर फूत्कार सुनाई पड़ती है। अब बंगाल में अन्न होता है, लेकिन कोई खानेवाला नहीं है। बिक्री के लिये पैदा होती हैं, लेकिन कोई खरीदार नहीं है। कृषक खेती पैदा करते हैं—पैसे नहीं मिलते। जमींदारों को वे लगान दे नहीं सकते। राजा के जमींदारी छीन लेने पर जमींदार सर्वहृत होकर दरिद्र हो गये। वसुमती के बहुप्रसविनी होने पर भी जनता कंगाल हो गयी। चोर-डाकुओं ने माथा उठाया और साधु पुरुषों ने घर में मुँह छिपाया।

इधर सन्तान-सम्प्रदाय नित्य चन्दन-तुलसी से विष्णुपाद पद्मों की पूजा करने लगा। जिनके घर में पिस्तौल-बन्दूकें थीं, सन्तानगण उससे वह छीन लाये। भवानन्द ने सहयोगियों से कह दिया था—"भाई! यदि किसी घर में मणि-माणिक्य गंजा हो और एक टूटी हुई बन्दूक भी हो, तो बन्दूक ले आना, धन-रत्न छोड़ देना।"

इसके बाद यह लोग गाँव-गाँव में अपने चर भेजने लगे। पर लोग जहाँ हिन्दू होते थे, कहते थे—"भाई! विष्णु पूजा करोगे?" इसी तरह बीस-पच्चीस मुसलमान बस्ती में पहुँच जाते और उनके घर में आग लगा देते थे। उनका सर्वस्व लूटकर हिन्दू विष्णु पूजकों में उसे वितरित कर देते थे। लूट का भाग

पाने पर लोगों के प्रसन्न होने पर उन्हें सन्तानगण मन्दिर में लाकर विष्णु चरण पर शपथ खिलाकर सन्तान बना लेते थे। लोगों ने देखा कि सन्तान होने में बड़ा लाभ है। विशेषतः मुसलमानों के राजत्वकाल में उनकी अराजकता और कुशासन से लोग ऊब उठे थे। हिन्दू-धर्म के विलोपावस्था के समय अनेक हिन्दू हिन्दुत्व स्थापन के लिये व्यग्र हो रहे थे। अतः दिन-प्रति दिन सन्तानों की संख्या बढ़ने लगी। प्रतिदिन सौ-सौ, मास में हजार-हजार की संख्या में ग्रामीण लोग सन्तान बनकर उनकी संख्या वृद्धि कर मुसलमानों को शासन से विरत करने लगे। जीवानन्द और भवानन्द के पादपद्मों में प्रणाम कर सन्तानों की संख्या अनन्त होने लगी। जहाँ वह लोग राजपुरुषों को पाते थे अच्छी तरह मरम्मत करते थे, प्रायः जान से ही मार डालते थे। जहाँ सरकारी खजाना पाते, तुरत लूट लेते और घर लाते थे। मुसलमानों के गाँव भस्म कर राख बनाये जाने लगे। स्थानीय मुसलमान नवाब यह सुनकर दल-के-दल सैनिकों को इनके दमन के लिये भेजने थे। लेकिन उस समय तक सन्तानगण दल बद्ध, शस्त्र युक्त और महादम्भशाली हो गये थे। उनके तेज के आगे मुसलिम फौज अग्रसर हो न पाती थी। यदि आगे बढ़ती थी, तो अभिन संख्या में सन्तान सैन्य उन पर आक्रमण कर उनको धुनकी हुई रुई को तरह उड़ा देती थी। कभी कोई दल यदि परास्त होता था, तो तुरन्त दूसरा बड़ा दल आकर उस मुस्लिम फौज का सर उड़ा देता था और मत्त होकर हरिनाम करता, नाचता गायब हो जाता था। उस समय लब्ध प्रतिष्ठ अंगरेज कुल के प्रातः सूर्य वारेन् हेस्टिंग्स भारतवर्ष के गवर्नर जेनरल थे। कलकत्ते में बैठे हुए वह राजनीतिक शृङ्खला की कड़ियाँ जोड़ रहे थे कि इसीसे समूचे भारत को वह बाँध लेंगे।

एक दिन भगवान् ने भी सिंहासन पर बैठकर निःसन्देह कहा था—तथास्तु। लेकिन वह दिन अभी दूर है। आजकल तो सन्तानों की दिगन्त व्यापिनी हरिध्वनि से वारेन् हेस्टिंग्स भी काँप उठे थे।

हेस्टिंग्स साहब ने पहले तो देशी फौज से विद्रोह निवारण की चेष्टा की थी। लेकिन उन देशी सिपाहियों की यह दशा हुई कि वह लोग एक बुड्ढी औरत के मुँह से भी यदि हरिनाम सुन पाते थे, तो भागते थे। अन्त में निरुपाय होकर वारेन् हेस्टिंग्स ने कप्तान टामस नामक एक सुदक्ष सेनापति के अधिनायकत्त्व में थोड़ी गोरी फौज भेजकर विद्रोह निवारण का यत्न किया।

कप्तान टामस विद्रोह निवारण के लिये बहुत ही उत्तम उपाय करने लगे। उन्होंने अपनी गोरी पल्टन के साथ नवाब की सेना, जमींदारों के आदमी मिलाकर एक अत्यन्त बलिष्ठ सैन्य तैयार कर ली। इसके बाद उस सम्मिलित सैन्य के टुकड़े-टुकड़े कर उपयुक्त नायकों के हाथ में उन्होंने सौंप दिया। साथ ही उन लोगों को थोड़े-थोड़े बँधे हुए अंचलों में विभक्त कर दिया। कह दिया कि जहाँ सन्तानों को पाओ, पशु की तरह मारो और हँकाओ। गोरी सैन्य दंभ की बोतल छान संगीन चढ़ाकर धावित हुई। लेकिन टामस की सैन्य जैसे खेती काटी जाती है, वैसे ही काटी जाने लगी। हरिध्वनि से टामस के कान बहरे हो गये। क्योंकि उस समय सन्तान असंख्य थे और प्रदेश भर में फैले हुए थे।

दूसरा परिच्छेद।

कम्पनी की उस समय अनेक कोठियाँ थीं। ऐसी ही एक कोठी शिवग्राम में थी। डानीवर्थ साहब इस कोठी के अध्यक्ष थे। उस समय की रेशम—कोठी की रक्षा का बहुत ही अच्छा प्रबन्ध हुआ था। डानीवर्थ ने इसी वजह से किसी तरह अपनी प्राण रक्षा की। लेकिन अपनी स्त्री-कन्या को कलकत्ता भेज देने के लिये उन्हें बाध्य होना पड़ा था। कारण डानीवर्थ सन्तानों द्वारा बहुत ही सन्तापित हुए थे। उसी समय टामस साहब थोड़ी फौज लेकर उस अँचल में पहुँचे थे। उस समय कितने ही डोम, चमार, लँगड़े-लूले भी परद्रव्य अपहरण में उत्साहित हो गये थे। उन सबों ने कप्तान टामस की रसद पर आक्रमण किया। कप्तान साहब बहुत ही विपद खाद्य-सामग्री, घी, मैदा, सुजी, चावल गाड़ियों पर लदवा कर ले आ रहे थे। इसे देखकर डोम-चमारों का दल अपना लोभ संवरण कर न सका। उन सबों ने जाकर गाड़ी पर आक्रमण किया। लेकिन सिपाहियों की दो-चार संगीने खाकर सब भागे। कप्तान टामस ने उसी समय कलकत्ते रिपोर्ट भेजी कि आज कुल १५७ सिपाहियों को लेकर मैंने १४,७३० विद्रोहियों को परास्त किया है। विद्रोहियों के २१५३ व्यक्ति मरे, १२२३ घायल हुए, ७ व्यक्ति बन्दी हुए। केवल अन्तिम संख्या सत्य थी। कप्तान टामस ने द्वितीय ब्लेनहम या रसवाक का युद्ध जीता है, यह सोचते हुए मूछों पर ताव देते हुए इधर-उधर ठाट से घूमने लगे। उन्होंने डानीवर्थ से कहा—"अब क्या डरते हो, बस, विद्रोहियों का दमन हो गया। अब अपनी स्त्री-कन्या को कलकत्ते से बुला लो।" इस डानीवर्थ ने उत्तर दिया—"ऐसा ही होगा, आप दश

दिन वहाँ ठहरिये, देश को जरा और शान्त होने दीजिये, फिर बुला लेंगे।" डानीवार्थ के पास पल्टन की मुर्गी पली हुई थी। उनके यहाँ पनीर भी बहुत अच्छी थी। विभिन्न वन्यपक्षी उनके टेबुल की शोभा बढ़ाते थे। दाढ़ीदार बावर्ची द्वितीय द्रौपदी था, अतः बिना कुछ बोले-चाले कप्तान टामस वहीं डटे रहने लगे।

इधर भवानन्द मन-ही-मन व्यस्त हैं कि कब इस कप्तान का सर काटकर द्वितीय शम्वरारि उपाधि धारण करूँ। अंगरेज इस समय भारतोद्धार के लिए (?) आये हैं, यह सन्तानगण तब तक समझ न सके थे। कैसे समझते? कप्तान टामस के सम सामयिक भी उस समय यह समझ न सके थे कि भारतवर्ष पर हमारा राज्य स्थापित हो सकेगा। उस समय तो भविष्य विधाता ही जानते थे। भवानन्द मन में सोचते थे कि इस असुर-वंश का एक दिन में निपात करूंगा। सब एकचित हो जायें और जरा असतर्क हों, हमलोग अलग रहें। यही विचार कर सब अलग रहे। उधर कप्तान टामस द्रौपदी गुण ग्रहण में संलग्न थे।

साहब बहादुर शिकार के बड़े शौकीन थे। कभी-कभी शिवग्राम के निकट के जंगल में शिकार खेलने निकल जाते थे। एक दिन डानीवार्थ के साथ अनेक शिकारियों को लेकर टामस शिकार के लिये निकल पड़े। कहना ही क्या है, टामस बड़े असमी साहसिक हैं, बलवीर्य में अंग्रेजों में अतुलनीय हैं। इस जंगल में शेर, भालू आदि हिंसक जन्तुओं का बाहुल्य है। बहुत दूर निकल जाने पर साथ के शिकारियों ने आगे बढ़ने से इनकार कर दिया कि निविड़ जंगल में हम न घुसेंगे। बोलो—"अब भीतर राह नहीं है, जा न सकेंगे।" डानीवर्थ भी ऐसे भयानक शेर के सामने पड़ गये थे कि वह भी घुसने से मुकर गये। वह

लोग लौटा चाहते थे। कप्तान टामस ने कहा—"तुम लोग लौट जाओ, मैं न लौटूँगा।" यह कहकर कप्तान साहब ने भयानक जंगल में प्रवेश किया।

वस्तुत: उस जंगल में राह न थी। घोड़ा आगे बढ़ न सकता था। लेकिन साहब ने अपना घोड़ा भी छोड़ दिया और कन्धे पर बन्दूक रखकर बढ़े आगे। प्रवेश कर इधर-उधर शेर की खोज करने लगे, पर शेर न था। फिर देखा क्या? एक बड़े पेड़ के नीचे खिले पुष्पों की लता अपने शरीर से लपेटे हुआ कौन बैठा हुआ है? एक नवीन संन्यासी बैठा अपने रूप से जंगल में उजेला किये हुए है। प्रस्फुटित पुष्प मानों उस शरीर का सन्निध्य पाकर समधिक सुगन्धयुल हो गया है। कप्तान टामस को पहले तो विस्मय हुआ, फिर क्रोध आया। कप्तान साहब खूब हिन्दी बोलते थे, बोले—"तुम कौन है?"

संन्यासी ने कहा—"मैं संन्यासी हूँ।"

कप्तान ने कहा—"टुम Rebel."

संन्यासी—वह क्या?

कप्तान—हाम टुमको गुली करके माड़ेगा।

संन्यासी—मारो।

कप्तान जरा मन में आगा पीछा कर रहे थे कि गोली मारें या न मारें। इसी समय विदयुत् वेग से संन्यासी ने आक्रमण कर बन्दूक छीन ली। संन्यासी ने अपना वक्षाकारण चर्म खोलकर फेंक दिया। एक झटके में जटा भी अलग हो गयी। कप्तान टामस ने देखा उसके सामने अपूर्व स्त्री मूर्त्ति है। सुन्दरी ने हँसते हँसते कहा—"साहब हम लोग स्त्री जाति हैं किसी को चोट नहीं पहुँचाती। मैं तुमसे एक बात पूछना चाहती हूँ

कि हिन्दू मुसलमानों की लड़ाई हो रही है तो इस बीच में तुम लोग क्यों बोलते हो ? अपने घर लौट जाओ।

साहब—टुम कौन है ?

शान्ति—देखते तो हो, संन्यासिनी हूँ। जिन लोगों से लड़ने आये हो, उन्हीं में से एक की स्त्री हूँ।

साहब—टुम हमाड़ा घड़ में रहेगा ?

शान्ति—क्या तुम्हारी उपपत्नी बनकर ?

साहब—इसी माफक रहने सकता, शादी नेहीं करेगा।

शान्ति—मुझे भी एक बात पूछनी है, हमारे घर में एक सुन्दर बन्दर था, वह हाल में ही मर गया है। उसकी जगह खाली पड़ी है। कमर में सिकड़ी डाल दूँगी, तुम उस दरबे में रहोगे ? हमारे बगीचे में खूब केला होता है।

साहब—तुम बड़ा sperited woman है। टुमारा curege पर हाम खुशी है। टुम हमाड़ा घड़ में चलो। टुमाड़ा आदमी लड़ाई में मड़ेगा। टब टुम क्या कड़ेगा।

शान्ति—तब हमारी एक शर्त हो जाये। युद्ध तो दो चार दिन होगा ही। अगर तुम जीतोगे, तो मैं तुम्हारी उपपत्नी होकर रहूँगी। अगर हम लोग जीतेंगे, तो तुम हमारे घर में उसी दरबे में बन्दर बनकर रहना।

साहब—केला बहुत अच्छा चीज। अभी तुम्हारा पास है।

शान्ति—ले अपनी बन्दूक ले। ऐसी बेवकूफ जाति के साथ कौन बात करे !

यह कहकर शान्ति बन्दूक फेंककर हँसती हुई भाग गयी।

तीसरा परिच्छेद ।

शान्ति साहब के पास से भागकर जंगल में गायब हो गयी। थोड़ी ही देर बाद साहब ने मधुर स्त्री कण्ठ से गाना सुना—

"ए यौवन-जल तरंग रोधिबे के ?
हरे मुरारे ! हरे मुरारे

इसके बाद ही सारंगी पर वही मधुर झनकार उठी—

"ए यौवन-जल तरंग रोधिबे के ?
हरे मुरारे ! हरे मुरारे !

इसके साथ ही पुरुष कण्ठ के साथ फिर गान हुआ—

"ए यौवन जल तरंग रोधिबे के ?
हरे मुरारे ! हरे मुरारे !

तीनों स्वरों की मिलित झनकार ने जंगल की समूची लताओं को कँपा दिया। शान्ति गाती हुई गायन के पूरे चरण गाने लगी—

ए यौवन जल तरंग रोधिबे के ?
हरे मुरारे ! हरे मुरारे !
जलेते तुफान होये छे,
आमार नूतन तरी भंसिलो सुखे,
माझीते हाल धरे छे,
हरे मुरारे ! हरे मुरारे !
भेङ्गे बालिर बाँध, पूराई मनेर साध,
जोरदार गाङ्गे जल छूटे छे राखिबे के ?
हरे मुरारे ! हरे मुरारे !"

सारंगी भी बज रही थी—

"जोरदार गांगे जल, छूटे छे राखिबे के ?
हरे मुरारे ! हरे मुरारे ।"

जहाँ बहुत ही घना जंगल है, भीतर क्या है, वाहर से यह दिखाई नहीं देता, शान्ति उसी के अन्दर प्रवेश कर गयी थी। वहीं उन्ही शाखा पल्लवों में छिपी हुई एक छोटी कुटी है। डालियों के ही बन्धन और पत्तों का ही छाजन है। काठ की जमीन उस पर मट्टी पटी हुई है। लता-द्वार खोलकर उसी के अन्दर शान्ति प्रवेश कर गयो। वहाँ जीवानन्द बैठे सारंगी बजा रहे थे।

जीवानन्द ने शान्ति को देखकर पूछा—"इतने दिनों के बाद गंगा में ज्वारका जल बढ़ा है क्या।

शान्ति ने हँसते हुए उत्तर दिया—"ज्वारका बढ़ा हुआ गंगा जल ही क्या तालों का डुबाता है ?"

जीवानन्द ने दुःखी होकर कहा—"देखो, शान्ति ! एक दिन तो व्रत भंग होने के कारण प्राण उत्सर्ग करूँगा ही। जो पाप हुआ है, उसका प्रायश्चित्त करना ही पड़ेगा। अब तक प्रायश्चित्त कर चुका होता; किन्तु केवल तुम्हारे अनुरोध के कारण कर न सका। लेकिन अब किसी दिन भी एक घोरतर में विलम्ब नहीं है। उसी युद्ध में मुझे प्रायश्चित्त करना पड़ेगा। इस प्राण को परित्याग करना ही होगा। मेरे मरने के दिन—"

शान्ति ने बात काटकर कहा—"मैं तुम्हारी धर्म पत्नी हूँ; सहधर्मिणी हूँ—धर्म में सहाय हूँ। तुमने अतिशय गुरु धर्म ग्रहण किया है। उसी धर्म की सहायता के लिये मैं आई हूँ। हम दोनों ही एक साथ रहकर उस धर्म में सहायक होंगे, इस लिये घर त्यागकर आई हूँ और वनवास कर रही हूँ। मैं तुम्हारे धर्म में वृद्धि ही करूँगी। विवाह इह काल के लिये भी है और

विवाह परकाल के लिये भी है। इह काल के लिये जो विवाह है, मन में समझ लो कि हमने वह किया ही नहीं। हम लोगों का विवाह केवल परकाल के लिये हुआ है। परकाल में इसका दूसरा फल होगा। लेकिन प्रायश्चित्त कीब ात क्यों? तुमने कौन सा पाप किया है? तुम्हारी प्रतिज्ञा है कि स्त्री के साथ एकासन पर न बैठेंगे। कौन कहता है कि तुम किसी दिन भी एकासन पर बैठते हो? फिर प्रायश्चित्त क्यों? हाय प्रभु! तुम मेरे गुरु हो, क्या मैं तुम्हें धर्म सिखाऊँ? तुम वीर हो; लेकिन क्या मैं तुम्हें वीर धर्म सिखाऊँ?

जीवानन्द ने आह्लाद से गद्गद् होकर कहा—"प्रिये! सिखलाओ तो सही में!" शान्ति प्रसन्नचित्त से कहने लगी, और भी देखो गोस्वामी जी! इहकाल में ही क्या हमारा विवाह निष्फल है? तुम मुझे प्रेम करते हो, मैं तुमसे प्रेम करती हूँ। इससे बढ़कर इहकाल में और कौन सा फल हो सकता है? बोलो बन्देमातरम्।" इसके बाद ही दोनों ने एक स्वर से, वन्दे मातरम्!" गान गाया।

चौथा परिच्छेद।

भवानन्द स्वामी एक दिन नगर में जा उपस्थित हुए। उन्होंने प्रशस्त राजपथ त्यागकर एक गली में प्रवेश किया। गली के दोनों बाजू ऊँची अट्टालिकाएँ हैं, केवल दोपहर के समय एकबार वहाँ भगवान सूर्य झाँक लेते हैं। इसके बाद अन्धकार ही अन्ध-

कार। गली में घुसकर पास के ही एक दो मंजिले मकान में भवानन्द ने प्रवेश किया। नीचे की मंजिल में जहाँ एक अर्ध-वयस्का स्त्री रसोई बना रही थी, वहीं जाकर भवानन्द स्वामी ने दर्शन दिया। वह स्त्री अर्धवयस्क, माटी झोटी काली कलूटी मैली धोती पहने, माथे का बाल ठीक खोपड़ी पर बाँधे हुई, दाल की बटलोही में कलछी डालकर ठन-ठन बजाती हुई, बाएँ हाथ से मुँह पर लटकते वाले बालों को हटाती, कुछ मुँह से बड़बड़ाती रसोई करती हुई सुशोभित हो रही थी। ऐसे ही समय भवानन्द महाप्रभु ने घर में प्रवेश कर कहा—"भाभी! राम राम!"

भाभी भवानन्द को देखकर शशव्दस्त होकर अपने हट हुए कपड़े ठीक करने लगी। इच्छा हुई कि शिर का मोहन जूड़ा खोल डाले, लेकिन खोल न सकी। हाथ में कलछी थी। हाय हाय! उस जूड़े के जंजाल में उसने एक बकुल पुष्प खोंस रखा था। वस्त्रांचल से ढाँकने की कोशिश की लेकिन यह क्या? आज तो एक पाँच हाथ का टुकड़ा मात्र पहनर खा था। अतः अंग ढाँक न सकी। वह पाँच हाथ का कपड़ा ऊपर उठाती थी, तो छाती खुलती थी, छाती ढाँकती थी, तो पीठ खुलती थी, लाचार बेचारी परेशान हो गई। किसी तरह बेचारी ने एक कोना खींच कर कान के पास तक लाकर आधा चेहरा ढाँकने का भावकर प्रतिज्ञा की, कि दूसरी धोती एक खरीदूँगी और अब इसे कभी न पहनूँगी। इस तरह व्यस्त होने के बाद बोली—"कौन गोसाईं ठाकुर! आओ आओ, लेकिन भाई! यह हमें राम रामकर प्रणाम क्यों?"

भवा०—तुम मेरी भाभी जो हो।

गौरी—अच्छा, आदर से कहते हो तो कह लो। प्रणाम

किया ही है, तो खुश रहो। फिर तुम्हें प्रणाम करना ही चाहिये, मैं उम्र में बड़ी हूँ। लेकिन आखिर हो तो गोसाईं ठाकुर देवता ही।

भवानन्द स्वामी से गौरी की उम्र काफी बड़ी—करीब पचीस वर्ष बड़ी है। लेकिन चतुर भवानन्द ने उत्तर दिया—"यह क्या भाभी! अरे तुम्हें रसीली देखकर भाभी कहता हूँ। नहीं तो हिसाब जब किया गया था, तो तुम मुझसे ६ वर्ष छोटी निकली थीं। क्या याद नहीं है? हम लोगों में हर तरह के वैष्णव हैं न। इच्छा है कि मठधारी ब्रह्मचारी के साथ तुम्हारी सगाई करा दूँ यही कहने आया हूँ।"

गौरी—यह कैसी बात? अरे रामराम! ऐसी बात भला कही जाती है? मैं ठहरी विधवा औरत!

भवा०—तो सगाई न होगी?

गौरी—तो भाई! जैसा समझो, वैसा करो। तुम लोग पंडित आदमी ठहरे। हम लोग तो औरत हैं; क्या समझें? तो कब होगी सगाई?

भवानन्द ने बड़ी मुश्किल से हँसी रोककर कहा—"बस एक बार उस ब्रह्मचारी से मुलाकात होते ही पक्की हो जायगी सगाई। और वह कैसी है?

गौरी जल गयी। मन में सन्देह हुआ कि शायद सगाई की बात तमाशा है। बोली—"है जैसी है, वैसी है।"

भवा०—तुम जरा जाकर एक बार देख आओ। कह देना कि मैं आया हूँ। एक बार मिलना चाहता हूँ।

इस पर गौरी भात-दाल छोड़कर, हाथ धोकर छमछम करती हुई सीढ़ियाँ तोड़ती ऊपर चढ़ने लगी। एक कमरे में जमीन पर चटाई बिछाकर एक अपूर्व सुन्दरी बैठी हुई है। लेकिन सौन्दर्य

पर एक घोर छाया है। मध्याह्न के समय कलकलवाहिनी प्रसन्न सलिला, विपुलजल स्रोतवती नदी के ऊपर मेघ आने जैसी यह कैसी छाया है! नदी हृदय पर तरंगे उछल रही हैं, तटवर्ती कुसुमवृक्ष वायु के झोंके में मस्त झूम रहे हैं, पुष्प भार से नमे जा रहे हैं, उनसे अट्टालिका श्रेणी सुशोभित है। तरणी श्रेणी के ताड़न से जल आन्दोलित हो रहा है। यह भी वैसी ही है। तरह वही पहले की तरह चारु, चिकने चंचलः छने केशदाम, पहले की वैसा ही तेज पुंज लालाट और उस पर पतली तूलिका से खिंची हुई भौं हैं, वही पहले जैसे चंचल मृग-नयन; लेकिन वैसे कटाक्ष-मय नहीं; वैसी लोलता नहीं, कुछ नम्र! अधरोंपर वही दाड़िम लालिमा, वैसे ही सुधारसपूर्ण, वैसे ही वनलता दुष्प्राप्य कोमलता-युक्त बाहु। लेकिन आज वह दीप्ति नहीं, वह उज्ज्वलता नहीं, वह प्रखरता नहीं, वह चंचलता नहीं, वह रस नहीं है। शायद वह यौवन नहीं है। केवल सौन्दर्य और माधुर्यमात्र है। नयी बात आ गयी है, धैर्य गाम्भीर्य। इसे पहले देखने से जान पड़ता था कि मनुष्य लोक की अतुलनीय सुन्दरी है, अब देखने से जान पड़ता है कि कोई स्वर्ग की शापग्रस्त देवी है। उसके चारों तरफ दो चार पुस्तकें पड़ी हुई हैं। दीवार पर खूँटी के सहारे तुलसी की माला लटक रही है। दीवारों पर जगन्नाथ, बलराम सुभद्रा कालियदमन, गोवर्धन धारण आदि के चित्र रंगे हुए हैं। वह चित्र उन के स्वयं बनाए हुए हैं; उनके नीचे लिखा हुआ है—"चित्र या विचित्र?" ऐसे ही कमरे में भवानन्द ने प्रवेश किया।

भवानन्द ने पूछा—"क्यों कल्याणि! शारीरिक कुशल तो है?"

कल्याणी—यह प्रश्न करना क्या आप न छोड़ेंगे? मेरे शारीरिक कुशल से आपका क्या मतलब?"

भवानन्द—जो वृक्ष लगाता है, वह उसमें नित्य जल देता है। वृक्ष के बढ़ने से ही उसे सुख होता है। तुम्हारे मृत शरीर में मैंने नवजीवन दिया है, बढ़ रहा है या नहीं, यह क्यों न पूछूँगा ?

कल्याणी—विषवृक्ष का क्या कभी दाम होता है ?

भवा०—जीवन क्या विष है ?

कल्यणी—न होता तो अमृत ढालकर मैं उसे ध्वंस करने पर क्यों तैयार होती ?

भव०—बहुत दिनों से पूछूँगा. सोच रहा था, लेकिन पूछ नहीं सका। किसने तुम्हारे जीवन को विषमय बना दिया था ?

कल्याणी ने स्थिर भाव से उत्तर दिया—"मेरे जीवन को किसी ने विषमय नहीं बनाया, जीवन स्वयं विषमय है। मेरा जीवन विषमय है; आपका जीवन विषमय है; सभी का जीवन विषमय है।"

भवा०—सच है; कल्याणी ! मेरा जीवन तो अवश्य विषमय है। उसी दिन से तुम्हारा व्याकरण समाप्त हो गया है ?

क०—नहीं।

भवा०—अभिधाप ?

क०—अच्छा नहीं मालूम होता।

भवा०—विद्या अर्जन में तुम्हारी कुछ प्रवृत्ति देखी थी। अब ऐसी अश्रद्धा क्यों ?

क०—आप जैसे पण्डित जब महा पापिष्ट हैं, तो न पढ़ना लिखना ही अच्छा है। मेरे पतिदेव की क्या खबर है प्रभु ?

भवा०—बारंबार यह संवाद क्यों पूछती हो ? वह तो तुम्हारे लिये मृत समान हैं।

क०—मैं उनके लिये मृत हूँ; वह मेरे लिये नहीं।

भवा०—वह तुम्हारे लिये मृतवत् होंगे, यही समझ के तो तुमने विष खाया था ? बार बार यह बात क्यों कल्याणी ?

क०—मर जाने से क्या संबंध मिट जाता है ? वह कैसे है ?

भवा०—अच्छे हैं।

क०—कहाँ हैं ? पदचिह्न में ?

भवा०—हाँ, वहीं हैं।

क०—क्या कर रहे हैं ?

भवा०—जो कर रहे थे। दुर्ग-निर्माण; अस्त्र-निर्माण, उन्हीं द्वारा निर्मित अस्त्र-शस्त्र से सहस्र-सहस्र सन्तान सज्जित हो रहे हैं। उन्हीं की कृपा से अब हम लोगों को तोप, बन्दूक, गोला गोली, बारूद आदि की कमी नहीं है। सन्तान गण में वही श्रेष्ठ हैं। वह हम लोगों का महत् उपकार कर रहे हैं; वह हम लोगों के दाहने हाथ हैं।

क०—यदि मैं प्राण त्याग न करती, तो इतना होता ? जिसकी छाती पर छेदही कलसी बँधी हो, वह क्या कभी भव सागर पार कर सकता है ? जिसके पैरों में लौह सीकड़ पड़े हों, वह क्या कभी दौड़ सकता है ? क्यों, संन्यासी ! तुमने अपना छार जीवन क्यों रखा था ?

भवा०—स्त्री सहधर्मिणी होती है; धर्म में सहायक होती है।

क०—छोटे छोटे धर्मों में। बड़े धर्मों के अनुसार कण्टक। मैंने विष कण्टक द्वारा उनके अधर्म का कष्टका उद्धार किया था। छिः, दुराचार पाम ब्रह्मचारी ! तुमने मेरे प्राण क्यों लौटाये ?

भवा०—अच्छा, तो न हो, मैंने जो किया है उसे मुझे वापस कर दो। कल्याणी ! मैंने जो प्राण दान किया है, क्या तुम उसे वापस कर सकती हो ?

क०—क्या आपको पता है, मेरी सुकुमारी कैसी है ?

भवा०—बहुत दिनों से उसकी खबर नहीं लगी। जीवानन्द बहुत दिनों से उधर गये ही नहीं।

क०—उसकी खबर क्या मुझे ला नहीं दे सकते ? स्वामी मेरे लिये त्याग है; लेकिन जब जिन्दा रह गयी हूँ, तो कन्या को क्यों त्याग दूँ ? अब तो सुकुमारी के पास जाने से ही जीवन में कुछ सुख मिल सकता है। लेकिन मेरे लिये इतना आप क्यों करेंगे ?

भवा०—करूँगा, कल्याणी ! तुम्हारे लिये कन्या ला दूँगा। लेकिन इसके बाद ?

क०—इसके बाद क्या, गोस्वामी ?

भवा०—स्वामी ?

क०—उन्हें इच्छापूर्वक त्यागा है।

भवा—यदि उनका व्रत पूर्ण हो जाय ?

क०—तो उनकी हूँगी। मैं जो बच गयी हूँ; क्या वह जानते हैं ?

भवा०—नहीं।

क०—आप से क्या उनकी मुलाकात नहीं होती ?

भवा—होती है।

क०—मेरी बात कभी नहीं करते ?

भवा—नहीं। जो स्त्री मर गयी, उससे फिर प्रीत से क्या सम्बन्ध ?

क०—क्या कहा ?

भवा—तुम फिर विवाह कर सकती हो; तुम्हारा पुनर्जन्म हुआ है।

क०—मेरी कन्या ला दो।

भवा०—ला दूँगा; तुम फिर विवाह कर सकती हो।

क०—तुम्हारे साथ न ?

भवा०—विवाह करोगी ?

क०—तुम्हारे साथ ?

भया०—यही मान लो।

क०—सन्तान धर्म कहाँ रहेगा ?

भवा०—अतल जल में।

क०—परकाल ?

भवा०—अतल जल में।

क०—यही महाव्रत है ?

भवा०—अतल जल में।

क०—किसलिये सब अतज जल में डुबाओगे ?

भवा०—तुम्हारे लिये। देखो, मनुष्य हो, ऋषी हो, सिद्ध हो, देवता हो, चित्त अवश्य होता है। सन्तानधर्म मेरा प्राण है। लेकिन आज पहले पहल कहता हूँ, तुम प्राण से भी बढ़कर प्राण हो। जिस दिन तुम्हें प्राण दान दिया, उसी दिन से मैं तुम्हारे पैरों पर गिर गया। मैं नहीं जानता था कि संसार में ऐसा रूप भी है। ऐसी रूपराशि जीवन में कभी देखूँगा, यदि यह जानता तो कभी सन्तान धर्म ग्रहण न करता। यह धर्म इस अग्नि में जलकर छार हो जाता है। धर्म जल गया है। प्राण है। आज चार वर्षों से प्राण भी जल रहा है। बचना नहीं चाहता। दाह ! कल्यानी ! दाह ! ज्वाला ! लेकिन जलनेवाल, ईंधन अब बच नहीं गया है। प्राण जा रहा है। चार बरस से सह रहा हूँ; अब सहा नहीं जाता। क्या तुम नेरी होगी ?

क०—तुम्हारे ही मुँह से सुना है कि सन्तान धर्म का एक

यह भी नियम है कि जिसकी इन्द्रिय परवश हो जाये उसका प्रायश्चित्त मृत्यु है। क्या यह सच है ?

भवा०—यह सच है।

क०—तो तुम्हारे लिये भी वही प्रायश्चित्त मृत्यु है।

भवा०—मेरे लिये एक मात्र प्रायश्चित्त मृत्यु है।

क०—तुम्हारी मनःकामना पूरी होने से मरोगे ?

भवा०—निश्चय मरूँगा।

क०—और यदि मैं मनःकामना पूरी न करूँ ?

भवा०—तब भी मृत्यु निश्चित है। कारण, मेरी इन्द्रिय पर-वश हो चुकी हैं।

क०—तो मैं तुम्हारी मनःकामनः पूरी न करूँगी। तुम कब मरोगे ?

भवा०—आगामी युद्ध में।

क०—तो तुम विदा हो। मेरी कन्या क्या भिजवा दोगे ?

भवानन्द ने आँसू भरी आँखों से कहा—"भिजवा दूँगा। क्या मेरे जाने पर मुझे हृदय में याद रखोगी।

कल्याणी—याद रखूँगी। व्रतच्युत विधर्मी के रूप में याद रखूँगी।

भवानन्द विदा हुए। कल्याणी पुस्तक पढ़ने लगी।

पाचवाँ परिच्छेद ।

भवानन्द-विचार सागर में गोते लगाते हुए मठ की तरफ चले। राह में अकेले चले जा रहे थे। वन में भी अकेले ही उन्होंने प्रवेश किया। अब उन्होंने देखा कि वन में उनके आगे आगे एक आदमी चला जा रहा है। भवानन्द ने पूछा—"कौन हो भाई ?"

अग्रगामी व्यक्ति ने कहा—"जानना चाहते हैं, उत्तर देता हूँ—एक पथिक !"

भवा०—वन्दे ।

वह आदमी बोला—"मातरम् ।"

भवा०—मैं भवानन्द स्वामी हूँ ।

अग्रगामी—मैं धीरानन्द ।

भवा०—धीरानन्द ! कहाँ गये थे ?

धीरानन्द—आप की ही खोज में ।

भवा०—क्यों ?

धीरा०—एक बात कहने ।

भवा०—कौन सी बात ?

धीरा—अकेले में कहने की है ।

भवा०—यहीं बताओ न, यह तो निर्जन स्थान है ।

धीरा०—आप नगर गये थे ?

भवा—हाँ ।

धीरा०—गौरी देवी के घर ?

भवा०—तुम भी नगर में गये थे क्या ?

धीरा०—वहाँ एक परम सुन्दरी रहती है ?

भवानन्द कुछ विस्मित भी हुए, डरे भी। बोले--यह सब कैसी बातें ?"

धीरा०—आपने उसके साथ मुलाकात की थी ?

भवा—इसके बाद ?

धीरा०—आप उस कामिनी के प्रति अति अनुरक्त हैं।

भवा०—(कुछ विचार कर) धीरानन्द ! क्यों इतनी खबर ली ? देखो धीरानन्द ! तुम जो कुछ कह रहे हो, सब सच है। लेकिन तुम्हारे अतिरिक्त कितने लोग यह बात जानते हैं ?

धीरानन्द—और कोई नहीं।

भवा०—तब तुम्हारा वध करने से ही मैं मुक्त हो सकता हूँ।

धीरा०—कर सकते हो ?

भवा०—तब आओ, इस निर्जन स्थान में ही युद्ध करें। हो सके मैं तुम्हारा बधकर कलंक से बचूँ या तुम मेरा बध कर दो ताकि सारी ज्वालाओं से मेरी मुक्ति हो जाये। बोलो, पास में अस्त्र है ?

धीरा०—है खाली हाथ किसकी मजाल है कि तुम्हारे सामने यह बातें करे ? यदि युद्ध तुम्हारी इच्छा है तो वही सही। सन्तान सन्तान में विरोध निषिद्ध है; किन्तु आत्मरक्षा के लिये किसी के साथ भी युद्ध करने में हर्ज नहीं। जो बात कहने के लिये मैं तुम्हें खोज रहा था, क्या वह सब सुन लेने पर युद्ध करना अच्छा न होगा ?

भवा०—हर्ज क्या है, कहो।

भवानन्द ने तलवार निकाल कर धीरानन्द के कन्धे पर रख दी। धीरानन्द भागे नहीं।

धीरा०—मैं यह कह रहा था कि तुम कल्याणी से विवाह कर लो—

भवा०—कल्याणी ! यह भी जानते हो ?

धीरा०—विवाह क्यों नहीं कर लेते ?

भवा०—उसके तो स्वामी है ?

धीरा०—वैष्णवों का ऐसा विवाह होता है।

भवा०—यह नीच वैरागियों की बात है—सन्तानों में नहीं। सन्तान की शादी नहीं होती।

धीरा०—सन्तान धर्म क्या परिहार्य है—तुम्हारे तो प्राण जा रहे हैं। छिः ! छिः ! मेरा कन्धा न कट गया ? (वस्तुतः धीरानन्द के कन्धे से रक्त निकल रहा था।

भवा०—तुम किस लिये अधर्म मति देने आये हो ? अवश्य ही तुम्हारा कोई स्वार्थ है।

धीरा०—वह भी कहने की इच्छा है। तलवार न धंसाना—बताता हूँ। इस सन्तान धर्म ने मेरी हड्डियों को जर्जर कर दिया है। मैं इसका परित्याग कर स्त्री पुत्रका मुँह देखकर दिन बिताने के लियेउतावला हो रहा हूँ। मैं इस सन्तान धर्म का परित्याग करूँगा। लेकिन क्या मेरे लिये घर जाकर बैठने का अवसर है ? विद्रोही के रूप में अनेक लोग पहचानते हैं। घर जाकर बैठते ही शायद राजपुरुष सर उतार ले जायेंगे। अथवा सन्तान लोग ही विश्वासघातक समझ कर मार डालेंगे। इसीलिये तुम्हें भी अपना साथी बना लिया चाहता हूँ।

भवा०—क्यों, मुझे क्यों ?

धीरा०—यही असली बात है। सन्तान गण तुम्हारे आधीन हैं। सत्यानन्द अभी यहां हैं नहीं, इनके नायक हो। तुम इस सेना को लेकर युद्ध करो; तुम्हारी विजय होगी, इसका मुझे विश्वास है। युद्ध में विजय प्राप्त कर क्यों नहीं तुम अपने नाम से एक राज्य स्थापित करते ? सेना तो तुम्हारी आज्ञाकारिणी है।

तुम राजा हो, कल्याणी तुम्हारी मन्दोदरी हो, मैं भी तुम्हारा अनुचर बनकर स्त्री-पुत्र का मुह देखकर दिन बिताऊँ और आशीर्वाद करूँ। सन्तान धर्म को अतलजल में डुबा दो।

भवानन्द ने धीरानन्द के कन्धे पर से तलवार हटा ली। बोले—"धीरानन्द ! युद्ध करो। तुम्हारा वध करूँगा। मैं इन्द्रिय-परवश हो सकता हूँ, लेकिन विश्वासघातक नहीं। तुमने मुझे विश्वासघाती होने का परामर्श दिया है। स्वयं भी विश्वासघातक हो। तुम्हें सामने मारने से ब्रह्महत्या भी न होगी। तुम्हारा वध करूँगा।"

बात समाप्त होते न होते धीरानन्द दम भर कर भागे। भवानन्द ने पीछा न किया। भवानन्द कुछ अनमने से थे, उन्होंने जब देखा, धीरानन्द का कहीं पता न था।

छठाँ परिच्छेद।

मठ में जाकर और फिर लौटकर भवानन्द जंगल में घुस गये। उस जंगल में एक जगह प्राचीन अट्टालिकाका भग्नावशेष है। उस ढूहे पर घास पात, लता आदि काफी जम आयी हैं। वहाँ असंख्य सर्पों का वास है। ढूहे की जगह अपेक्षाकृत साफ और ऊँची थी। भवानन्द उसीपर जाकर बैठे। बैठे हुए भवानन्द चिन्ता में मग्न हो गये।

भयानक अँधेरी रात थी। उस पर वह जंगल अति विस्तृत,

एक बारगी शून्य जंगली वृक्ष लताओं से घना और दुर्भेदय, गमनागम में दुष्कर है। आवाज आती भी है, तो भूके शेर की हुङ्कार, अन्यान्य वन-पशुओं के भागने या बोलने का शब्द। कभी पक्षियों के पर को फटफटाने की आवाज, तो कभी भागते हुए पशुओं के पैर की खरखराहट। ऐसे निर्जन स्थान में उस टूटे पर अकेले भवानन्द बैठे हुए हैं। उनके लिये इस समय पृथिवी है ही नहीं; या केवल उपाधान मात्र है। भवानन्द निश्चल थे। श्वास प्रश्वास अति सूक्ष्म अपने में ही विलीन, माथे पर हाथ रखे बैठे हैं। मन में सोचते हैं, जो होता है, अवश्य होगा। भागीरथी जल तरंग के बीच क्षुद्र हस्ती की तरह इन्द्रिय स्रोत में डूब गया, यही दुःख है। एक क्षण में इन्द्रिय का ध्वंस हो सकता है—शरीर निपात कर देने से। मैं इसी इन्द्रिय के बश में हो गया। मेरा मरना ही अच्छा है। धर्मत्यागी। छिः छिः! अवश्य मरूँगा। इसी समय माथे पर पेचक ने भयानक शब्द किया। भवानन्द अब खुल के बड़बड़ाने लगे—"यह कैसा शब्द? कान में ऐसा सुनाई पड़ा, मानों भय का आह्वान हो। मैं नहीं जानता मुझे कौन बुलाता है—यह किसका शब्द है? किसने राह बतायी, किसने मरने के लिए कहा? पुण्यमय अनन्त! तुम शब्द शब्दमय हो, लेकिन तुम शब्द का अर्थ तो मैं समझ नहीं पाता हूँ। मेरी धर्म में मति दो, मुझे पापसे विरत। करो धर्म हे गुरुदेव! धर्म में मेरी मति हो।"

इसी समय भीषण जंगल मेंसे मधुर साथ ही गम्भीर, प्रेम-भेदी मनुष्य कण्ठ सुनाई दिया "आशीर्वाद देता हूँ, धर्ममें तुम्हारी मति रुचि होगी।"

भवानन्द के शरीर के रोंगटे खड़े हो गये। यह क्या? यह

तो गुरुदेव की आवाज है। "महाराज! आप कहाँ हैं? इस समय सेवक को दर्शन दीजिये।"

लेकिन किसी ने भी दर्शन न दिया। किसी ने भी उत्तर न दिया भवानन्द ने बारंबार बुलाया, लेकिन कोई उत्तर न मिला। इधर उधर खोजा कहीं कोई न था।

रात बीतने पर जब जंगल में प्रभात सूर्य का उदय हुआ, जंगल में पत्तों पत्तों की हरियाली जब चमक उठी, तब भवानन्द मठ में वापस आ गये। कानों में आवाज पहुँची—"हरे! मुरारे! हरे! मुरारे!" पहचान गये कि यह सत्यानन्द की आवाज है। समझ गये कि प्रभु वापस आ गये।

सातवाँ परिच्छेद।

जीवानन्द के कुटी से बाहर चले जानेपर शान्ति देवी फिर सारंगी लेकर मृदु स्वर में गाने लगी:—

"प्रलय प्रयोधिजले धृततानसि वेदं
विहित-विहित्र चरित्र मथे मदं.
केशवधृत मीन शरीर
जय जगदीश हरे!"

गोस्वामी विरचित स्तोत्र को जिस समय सारंगी की मधुर ध्वनिपर कोमल स्वर से शान्ति गाने लगी, उस समय वह स्वर--लहरी वायुमण्डल पर इस तरह तरंगित हो उठी,

जिस तरह जल अवगाहन पर स्रोत वाहिनी नदी में धारा कुण्डलाकार होकर लहराने लगती है। शान्ति गाने लगी:—

"विन्दसि यज्ञ विधेरह: श्रुतिजातं
सदय हृदय-दर्शित-पशुघातम्,
केशव धृत बुद्ध शरीर
जय जगदीश हरे !"

इसी समय किसी ने बाहर से गम्भीर स्वर में—मेघ गर्जन-वन गंभीर स्वर में गाया—

"म्लेच्छ निवहनिधने कलयसि करवालम्
धूमकेतुमित किमदि करालम्,
केशवधृत कल्कि शरीर
जय जगदीश हरे"

शान्ति ने भक्ति भाव से प्रणत होकर सत्यानन्द के पद की धूलि ग्रहण की। बोली—"प्रभो ! मेरा ऐसा कौन सा भाग्य है, कि श्री पादपद्मों का यहाँ दर्शन मिला—आज्ञा दीजिये, मुझे क्या करना होगा ? यह कहकर शान्ति ने फिर स्वर लहरी छेड़ी—

"भवचरणप्रणाता वयमिति भावय
कुरु कुशलं प्रणतेषु।"

सत्यानन्द ने कहा—"बेटी तुम्हारी कुशल ही होगी।"

शान्ति—कैसे, भगवन् ! आप की तो आज्ञा है—मेरा वैधव्य !

सत्या०—तुम्हें मैं पहचानता न था, बेटी ! रस्सी की मजबूती न जानकर मैंने उसे खींचा था। तुम मेरी अपेक्षा ज्ञानी हो। इसका उपाय तुम्हीं करो। जीवानन्द से न कहना कि मैं सब कुछ जानता हूँ। तुम्हारे प्रलोभन से वह अपनी जीवन-

रक्षा कर सकेंगे। इतने दिनों से कर ही रहे हैं; ऐसा होने से मेरा कार्योद्धार हो जायेगा।

शान्ति के उन विशाल लोल कटाक्षों में निदाछ कादम्बिनी विराजित विजली तुल्य घोर रोष प्रकट हुआ। उसने कहा—"यह क्या कहते हैं, महाराज! मैं और मेरे पति एक आत्मा हैं। मरना होगा तो वह मरेंगे ही, इसमें मेरा नुकसान ही क्या है? मैं भी तो साथ साथ मरूँगी। उन्हें स्वर्ग होगा, तो क्या सोचते हैं, मुझे स्वर्ग न मिलेगा?"

ब्रह्मचारी ने कहा—देवी! मैं कभी हारा न था, आज तुमसे तर्क में हार मानता हूँ। माँ! मैं तुम्हारा पुत्र हूँ। सन्तान पर स्नेह रखो। जीवानन्द के प्राण की रक्षा करो। इसीसे मेरा कार्योद्धार होगा।

बिजली हसी। शान्ति ने कहा,—मेरे स्वामी का धर्म मेरे स्वामी के ही हाथ है। मैं उन्हें धर्म से विरत करने वाली कौन हूँ? इहलोक में स्त्रीका देवता पति हैं; किन्तु परकाल में सबका पिता धर्म होता है। मेरे समीप मेरे पति बड़े हैं, उनकी अपेक्षा मेरा धर्म बड़ा है। उससे भी बढ़कर मेरे लिये मेरे पति का धर्म है। मैं अपने धर्मको जिस दिन चाहूँ जलांजलि दे सकती हूँ लेकिन क्या स्वामी के धर्मकी जलांजलि दे सकती हूँ? महाराज! तुम्हारी आज्ञा पर मरना होगा तो मेरे स्वामी मरेंगे, मैं मना कर नहीं सकती।"

इस पर ब्रह्मचारी ने ठण्डी साँस भर कर कहा,—माँ इस घोर व्रत में बलिदान ही है। हम सबको बलिदान चढ़ाना पड़ेगा। मैं मरूँगा, जीवानन्द, भवानन्द सभी मरेंगे, शायद तुम भी मरोगी; किन्तु देखो, कार्य पूरा करके ही मरना होगा; बिना कार्य के मरना किस काम का? मैंने केवल जन्मभूमिके ही माँ माना था

और किसी को भी माँ नहीं कहा क्योंकि सुजला सफला माता के अतिरिक्त मेरी और कोई माता नहीं। अब तुम्हें भी माँ कहकर पुकारा है। तुम माता होकर हम सन्तानों का कार्य सिद्ध करो। जिससे हमारा कार्योद्धार हो वही करो, जीवानन्द की प्राण-रक्षा करना; अपनी रक्षा करना।

यह कहकर सत्यानन्द 'हरे मुरारे मधु कैट भारे' गाते हुए चले गये।

आठवाँ परिच्छेद।

क्रमशः सन्तान सम्प्रदाय में यह समाचार प्रचारित हुआ कि सत्यानन्द आ गये हैं, सन्तान से कुछ कहना चाहते हैं, अतः उन्होंने सबको बुलवाया है। यह सुन कर दल के दल सन्तान लोग आकर उपस्थित होने लगे। चाँदनी रात में नदी तट पर दारू के वृहत् जंगल में आम, पलस, ताड़, वट पीपल, बेल शाल्मली आदि पेड़ों के नीचे करीब करीब दश सहस्त्र सन्तान आदि उपस्थित हो गये। सब आपस में सत्यानन्द के लौट आने का समाचार सुनकर महा कोलाहल ध्वनि करने लगे। सत्यानन्द किस लिये वहाँ गये थे, यह साधारण लोग जानते न थे। अफवाह थी कि वह सन्तान की मंगल कामना से प्रेरित हो कर हिमालय पर्वत पर तपस्या करने गये थे। सब आपस में कानाफूसी करने लगे,

"महाराज की तपस्या सिद्ध हो गयी है—अब हमलोगों

का राज्य होगा" इस पर बड़ा कोलाहल होने लगा। कोई चीत्कार करने लगा, -मारो.-मारो, पापियों को मारो। कोई कहता.—"जय-जय! महाराज की जय! "कोई गाने लगा, —"हरे मुरारे मधुकैट मारे। किसी ने 'वन्देमातरम् गाना गाया। कोई कहता, 'भाई! ऐसा कौन दिन होगा कि तुच्छ बंगाली होकर रणक्षेत्र में शरीर उत्सर्ग करूँगा। "कोई कहता, "भाई! ऐसा कौन दिन आवेगा कि मुसलमानों की मसजिद तोड़ कर राधा दामोदर का मन्दिर निर्माण करूँगा। "कोई कहता—"भाई! ऐसा कौन दिन होगा कि अपना ही धन स्वयं भोग करेंगे।" इस तरह दश सहस्र मनुष्य कण्ठ स्वर से निकली गगन भेदी ध्वनि से सारा जंगल प्रान्त नदी वृक्ष, पहाड़ सब कांप उठे। एकाएक शब हुआ वन्देमातरम् और लोगों ने देखा कि ब्रह्मचारी सत्यानन्द सन्तान के मध्य आकर खड़े हो गये। इसी समय दश सहस्र सन्तान—मस्तक उसी चाँदनी में वनभूमि प्रणत हो गये। बहुत ही ऊँचे स्वर में जलद गंभीर शब्दों में सत्यानन्द ने दोनों हाथ ऊपर उठा कर कहा, "शंख, चक्र, गदा पद्मधारी, वनमाली बैकुण्ठ नाथ जो केशिमथन मधुमुर नरकमर्दन, लोक पाल न हैं, वह तुम लोगों का मंगल करें। वह तुम लोगों के बाहुओं में, बल प्रदान करें, मन में. भक्ति दें, धर्म में शक्ति दें। तुम सब लोग मिल कर एक बार उनका गुनगान करो। इस पर दश सहस्र कण्ठों से एक साथ गान होने लगा

"जय जगदीश हरे।
प्रलयपयोधि जले धृतवानसि वेदं
विदित विहित्र मथेदम्,
जय जगदीश हरे।

इसके उपरान्त सत्यानन्द महाराज उन लोगों को पुनः आशीर्वाद प्रदानकर बोले—

"सन्तानों! तुमलोगों से आज मुझे कुछ विशेष बात कहनी है। टामस नाम के एक विधर्मी दुराचारी ने अनेक सन्तानों का नाश किया है। आज रात हमलोग उसका ससैन्य वध करेंगे! जगदीश्वर की ऐसी ही आज्ञा है, तुम लोग क्या कहते हो?

भयानक हर्षध्वनि से जंगल विदीर्ण हो उठा—"अभी मारेंगे बताओ, चलो, उन सबको दिखा दो। मारो! मारो! शत्रुओं का नाश करो।" इस तरह के शब्द दूर के पहाड़ से टकराकर प्रतिध्वनित होने लगे। इस पर सत्यानन्द फिर कहने लगे, — इसके लिये हम लोगों का जरा धैर्य अवलम्बन करना पड़ेगा। शत्रुओं के पास तोप है; विना तोप के उनके साथ युद्ध हो नहीं सकता। विशेषतः वह सब वीर जाति हैं। हमारे पद चिह्न हुर्रा से १७ तोपें आ रही हैं। तोपों के पहुँचते ही हम लोग युद्ध यात्रा करेंगे। यह देखो, प्रभात हुआ चाहता है। ब्राह्ममुहुर्त्त के ४ बजते ही, लेकिन यह क्या"—

"गुडुम—गुडुम—गुम्" अकस्मात् चारो तरफ विशाल जंगल में तोपों की आवाज होने लगी। यह तोप अङ्गरेजों की थी। जाल में पड़ी हुई मछली को तरह कप्तान टामस ने सन्तानों को इस जङ्गल में घेरकर वध करने का उद्योग किया है।

नवाँ परिच्छेद ।

"गुडुम्', गुडुम् , गुम् "अंगरेजों की तोपें गर्जन करने लगीं। वह शव्द समूचे जंगल में प्रतिध्वनित होकर सुनाई पड़ने लगा "गुडुम्-गुडुम् गुम् ।" ऐसी ही ध्वनि नदी के बाँध पर टकरा कर सुनाई पड़ी—"गुडुम्-गुडुम् गुम ।" सत्यानन्द ने तुरत आवाज दी—"देखो, किसकी तोपें हैं ?" कई सन्तान तुरत घोड़े पर चढ़कर देखने के लिये चल पड़े । लेकिन उन लोगों के जंगल से निकलते ही उन पर सावन की धारा के समान गोले आकर पड़े । अश्वसहित उन सबने वहीं अपना प्राण त्याग किया। दूर से सत्यानन्द ने देखा। बोले--"पेड़ पर चढ़कर देखो ?" उनके कहने के साथ जीवानन्द ने एक पेड़पर ऊँचे चढ़कर बताया—"अंगरेजों की तोपें हैं। सत्यानन्द ने पूछा—"अश्वारोही सैन्य है, या पदातिक ?"

जीवा०—दोनों हैं।

सत्या०—कितने हैं ?

जीवा०—अन्दाज नहीं लग सकता। वह सब जंगल की आड़ से वाहर हो रहे हैं।

सत्या—गोरे हैं या केवल देशी फौज ?

जीवा०—गोरे हैं ।

अब सत्यानन्द ने कहा—"तुम पेड़ से उतर आओ।"

जीवानन्द पेड़ से उतर आये ।

सत्यानन्द ने कहा—"तुम दश हजार सन्तान यहाँ उपस्थित हो। देखना है, क्या कर सकते हो ? जीवानन्द ! आज के सेनापति तुम हो। "सशस्त्र जीवानन्द हर्षोत्फुल्ल एक छलांग में

घोड़े पर सवार हो गये। उन्होंने एक बार नवीनानन्द की तरफ ताककर इशारे में ही कुछ कहा—कोई उसे समझ न सका। नवीनानन्द ने भी इशारे में ही क्या उत्तर दिया, कोई समझ न सका। केवल वह दोनों ही आपस में समझ गये कि शायद इस जीवन की यह आखिरी मुलाकात है। इस पर नवीनानन्द ने दाहनी भुजा उठाकर लोगों से कहा—"भाइयों! यही समय है. गाओ—"जय जगदीश हरे! दश सहस्र सन्तानों के मिलित कण्ठ ने आकाश भूमि वन प्रांत कँपा दिया। तोप का शब्द उस भीषण हुँकार में डूब गया; दश सहस्र ने भुजा उठाकर गया—

"जय जगदीश हरे!

म्लेच्छ निवहनिधने कलयसि कर वालम्।

इसी समय अंगरेजों की गोला वृष्टि जंगल का भेदन करती हुई सन्तानों पर आकर पड़ने लगी। कोई गाता-गाता छिन्न मस्तक छिन्नबाहु छिन्नहृत पिण्ड होकर जमीन पर गिरने लगा। लेकिन गाना बन्द न हुआ। वह सब गाते ही रहे--"जय जगदीश हरे।"

गाना समाप्त होते ही सब विस्तब्ध हो गये। वह सारा वातावरण, नदी, जंगल, पहाड़ एक दम निस्तब्ध हो गया। केवल तोपों का गर्जन, गोरों के अस्त्रों की झंकार और पदध्वनि दूर से सुनाई पड़ने लगी।

उस निस्तब्धता को भंग करते हुए सत्यानन्द ने पूछा—"भगवान् तुम्हारी रक्षा करेंगे, तोप कितनी दूरी पर है?"

ऊपर से एक ने आवाज दी—'इसी जंगल के समीप एक छोटा मठ है, उसी के पास।

सत्या०—तुम कौन हो?

ऊपर से आवाज आई--"मैं नवीनानन्द।"

अब सत्यानन्द ने कहा--"तुम लोग दश हजार हो, तुम्हारी विजय होगी, क्या देखते हो, छीन लो तोपें!"

यह सुनते ही अश्वारोही जीवानन्द ने आवाज दी--"आओ भाइयो मारो।"

इसपर दश सहस्र सन्तान सेना, अश्वारोही और पदातिक तीर की तरह धावा बोलती आगे बढ़ी। पदातिकों के कन्धे पर बन्दूक कमर में तलवार और हाथ में भाले हैं। जंगल से बाहर होते अनेक गोले आकर उन पर पड़ने और उन्हें छिन्न भिन्न करने लगे। बहुत सन्तानों ने बिना युद्ध किये ही गिरकर प्राणत्याग किया। एक ने जीवानन्द से कहा--"जीवानन्द! अनर्थक प्राणिहत्या से क्या फायदा है?"

जीवानन्द ने मुड़कर देखा, कहनेवाले भवानन्द थे। जीवानन्द ने पूछा--"तब क्या करने को कहते हो?"

भवा०--वन के अन्दर रहकर वृक्षों का आश्रय लेकर अपनी प्राण रक्षा करें। तोप के मुँह में खुले मैदान में, बिना तोप की सन्तान सैन्य एक क्षण भी टिक न सकेगी। लेकिन जंगल में पेड़ों की आड़ लेकर हम लोग बहुत देर तक युद्ध कर सकते हैं।

जीवा०--तुम ठीक कहते हो। लेकिन प्रभु की आज्ञा है कि तोप छीन ली जाये। अतः हम लोग तोप छीनने ही जायेंगे।

भवा०--किसकी हिम्मत है कि तोप छीन सके। लेकिन यदि जाना ही है, तो तुम ठहरो, मैं जाता हूँ।

जीवा०--यह न होगा, भवानन्द! आज मेरे मरने का दिन है।

भवा०--आज मेरे मरने का दिन है।

जीवा०--मुझे प्रायश्चित्त करना होगा।

भवा०—तुम निष्पाप हो, तुम्हें प्रायश्चित्त की जरूरत नहीं। मेरा चरित्र कलुषित है। मुझे ही मरना होगा। तुम ठहरा, मैं जाता हूँ।

जीवा०—भवानन्द, तुमसे क्या पाप हुआ है, मैं नहीं जानता लेकिन तुम्हारे रहने से सन्तानों का उद्धार होगा, मैं जाता हूँ।

भवानन्दने नीरव होकर फिर कहा—"मरना होगा, तो आज ही मरेंगे, जिस दिन जरूरत होगी, उसी दिन मरेंगे। मृत्यु के लिये मुझे समय काल की जरूरत नहीं।

जीवा०—तब आओ।

इस बात पर भवानन्द सबके आगे हुए। दल दल, एक एक कर सन्तान गोले खाकर मरकर गिरने लगे। सन्तान सैन्य खंड होने लगी। आगे की तरफ तीर की तरह बढ़ते हुए सन्तान गोला खाकर कटे वृक्ष की तरह नीचे गिरते थे। सैकड़ों की लाशें पट गयीं। इसी समय भवानन्द ने चिल्लाकर कहा—"आज इस तरंग में सन्तानों को कूदना है, कौन आता है, भाई ?"

इस पर सहस्र सहस्र कण्ठों से आवाज आई "बन्देमातरम्।" दनादन गोले आ रहे थे। तीर गिर रहे थे; लेकिन सन्तान सैन्य तीर की तरह आगे बढ़ती ही जाती थी। एक लक्ष्य तोप छीनना है।

दसवाँ परिच्छेद ।

इसके बाद तो दस हजार सन्तान सैन्य 'वन्देमातरम्' गाती हुई, अपने भाले आगे कर तीर की तरह तोप श्रेणी पर जा पड़ी। यद्यपि वह लोग गोले और गोलियों की बौछार से छत विक्षत हो चुके थे; लेकिन पलटे नहीं, भागे नहीं। घनघोर युद्ध शुरू हो गया। लेकिन इसी समय रणकुशल टामस की आज्ञा से एक सैन्य बन्दूकों पर संगीन चढ़ाकर पीछे से निकल कर सन्तानों के दाहिने बाजू पर आ गिरी। इस दोतरफी मार से सन्तान सैन्य निराश होने लगी। हर क्षण सैकड़ों सन्तान मर जख्मी होकर गिरने लगे। अब जीवानन्द ने कहा—"भवानन्द! तुम्हारी ही बात ठीक थी। अब सन्तान सैन्य को नाश करने की जरूरत नहीं, लौटाओ, इन्हें।"

भवा०—अब कैसे लौट सकते हैं? अब तो जो पीछे पलटेगा, वही मरेगा।

जीवा०—सामने और दाहने से आक्रमण हो रहा है; आओ, धीरे धीरे बाएँ होकर निकल चलें।

भवा०—बाएँ घूमकर कहाँ जाओगे? बाएँ नदी है—वर्षा से भरी हुई नदी। इधर गोले से बचोगे, तो नदी में डूब कर मरोगे।

जीवा०—मुझे याद है, नदी पर एक पुल है।

भवा०—लेकिन इतनी संख्या के सन्तान जब पुल पर एक हो जायेंगे, तो एक ही तोप उनका समूल नाश कर देगी।

जीवा०—तब एक काम करो। आज तुमने जो शौर्य दिखाया है, उससे तुम सब कुछ कर सकते हो, थोड़ी सैन्य के साथ तुम

सामना न छोड़ो, मैं अवशिष्ट सैन्य को बाएँ घुमाकर निकाल ले जाता हूँ। तुम्हारे साथ की सैन्य तो अवश्य ही विनष्ट होगी, लेकिन अवशिष्ट सन्तान सैन्य नाश से बच जायेगी।

भवा०—अच्छा, मैं ऐसा ही करूँगा।

इस तरह दो हजार सैन्य के साथ भवानन्द ने सामने से फिर गोलन्दाजों पर आक्रमण किया। उनमें अपूर्व उत्साह था। घोरतर युद्ध होने लगा। गोलन्दाज सैन्य उनके विनाश में और तोप रक्षा में संलग्न हुई। सैकड़ों सन्तान कट कट कर गिरने लगे। लेकिन प्रत्येक सन्तान अपना बदला लेकर मरता था।

इधर अवसर पाकर जीवानन्द अवशिष्ट सैन्य के साथ बाएँ मुड़ कर जंगल के किनारे से आगे बढ़े। कप्तान टामस के सहकारी लेफ्टिनेण्ट वाटसन ने देखा कि सन्तानों का बहुत बड़ा दल भागने की चेष्टा से बाएँ घूमकर जाना चाहता है। इस पर उन्होंने देशी सिपाहियों की सैन्य लेकर उनका पीछा किया।

कप्तान टामस ने भी यह देखा। सन्तान सैन्य का प्रधान भाग इस तरह गति बदल रहा है, यह देखकर उन्होंने अपने दूसरे सहकारी हे से कहा,—"मैं दो चार सौ सिपाहियों के साथ सामने की सैन्य को मारता हूँ, तुम शेष सैन्य के साथ उन पर धावा करो। बाएँ से वाटसन जाते हैं, दाहने से तुम जाओ। और देखो, आगे, जाकर पुल का मुँह बन्द कर देना। इस तरह वह सब तरफ से घिर जायेंगे। तब उन्हें फँसी चिड़िया की तरह मार गिराओ।" देखना देशी फौज भागने में बड़ी तेज होती है; अतः सहज ही उन्हें फँसा न पाओगे। अश्वारोही सैन्य को वन में अन्दर से छिपकर पहले पुल के मुँह पर पहुँच जाने को कहो, तब वह फँस सकेंगे।"

कप्तान टामस ने, जो कुशल सेनापति था, अपने अहंकार के

वश होकर यहीं भूल की। उसने सनमुख सैन्य को तृणवत् समझ लिया था। उसने केवल दो सौ पदातिक सैन्य को अपने पास रहने दिया और शेष सब को भेज दिया। चतुर भवानन्द ने जब ये देखा कि तोप के साथ समूची सैन्य उधर चली गयी है. और सामने की क्षुद्र सैन्य सहज ही वध्य है. तो उन्होंने अपनी सैन्य को जोश दिलाया—क्या देखते हो. सामने मुट्ठी भर अंगरेज हैं. मारो; उधर जीवानन्द की सहायता करना है। बोलो—"जय जगदीश हरे।" इस पर वह सन्तान सैन्य टामस की सैन्य पर टूट पड़ी। उस आक्रमण को थोड़े से अंगरेज सह न सके। खेती की तरह वह कटने लगे। भवानन्द ने स्वयं जाकर कप्तान टामस को पकड़ लिया। कप्तान अन्त तक युद्ध करता रहा। भवानन्द ने कहा—कप्तान साहब! तुम्हें मारूँगा नहीं. अंगरेज हमारे शत्रु नहीं हैं। क्यों तुम मुसलमनों की सहायता करने आये? आओ तुम्हें प्राण दण्ड देता हूँ, लेकिन अभी तुम बन्दी अवश्य रहोगे। अँगरेजों की जय हो. तुम हमारे मित्र हो।

कप्तान ने भवानन्द को मारने के लिए संगीन उठाया. लेकिन भवामन्द उन्हें शेर की तरह जकड़े हुए थे. वह हिल न सके। तब भवानन्द ने अपने सैनिकों से कहा.—"बाँधो इन्हें।" दो-तीन सन्तानों ने टामस को बाँध लिया। भवानन्द ने कहा "इन्हें. घोड़े पर बैठाकर ले चलो। हम लोग जीवानन्द की सहायता को जाते हैं।

इसी तरह वह अल्पसंख्यक सन्तान सैन्य कप्तान टामस को कैदी बना घोड़े पर चढ़ भवानन्द के साथ जीवानन्द की सहायता के लिये आगे बढ़े।

जीवानन्द की सेना का उत्साह टूट 'चुका था। वह भागने

पर तैयार थी। लेकिन जीवानन्द और धीरानन्द ने उन्हें समझा कर किसी तरह ठहराया। परन्तु सब सेना को जीवानन्द और धीरानन्द पुलकी तरफ ले गये। वहाँ पहुँचते ही एक तरफ से हे ने और दूसरी तरफ से वाटसन ने उन्हें घेर लिया अब सिवा युद्ध के परित्रान न था। इधर सेना मग्नोत्साह थी।

ग्यारहवाँ परिच्छेद।

इसी समय टामसकी तोपें दाह में आ पहुँची। अब सन्तानों का दल एक दम छिन्न भिन्न होने लगा। उन्हें प्राणरक्षा की कोई आशा न रही। जिसे जिधर राह मिली, भागने लगा। जीवानन्द और धीरानन्द ने उन्हें बहुत संयत करने की चेष्टा की लेकिन कोई फल न हुआ। सन्तानों का दल तितर बितर होने लगा। इसी समय ऊँची आवाज में सुनाई दिया—"पुल पर जाओ पुल पर जाओ. उस पार चले जाओ। अन्यथा नदी में डूब मरोगे। अंगरेजों की सेना की तरफ मुँह किये हुए पुलपर चले जाओ!"

जीवानन्द ने देखा कि कहने वाले सामने भवानन्द हैं। भवानन्द ने कहा—"जीवानन्द! तुरत सैन्य को पुल पर ले जाओ। दूसरे प्रकार से रक्षा नहीं है। यह मन्तव्य सुनते ही सन्तान सैन्य पुलपर क्रमशः पहुँचने लगी। थोड़ी ही देर में समूची सन्तान सैन्य पुल पार जा पहुँची। भवानन्द, जीवानन्द धीरानन्द सब एकत्र थे। भवानन्द ने जो कहा था, वही हुआ।

अंगरेजों की तोप पुल पर उसके मुँहपर लगी और वह गोले उगलने लगी। भयानक सन्तान क्षय होने लगा। यह देखकर भवानन्द ने कहा—"जीवानन्द! एक तोप हमारा नाश कर डालेगी? क्या देखते हो, आओ हम तीनों उसपर टूटकर अधिकार कर लें।" भवानन्द के यह कहते ही नाद उठा—"बन्दे मातरम्।" और इसी समय तीन तलवारें पुनः शिरों पर घूम उठीं। तोपची तमाशा ही देखते रह गये। हे और वाटसन दूर खड़े अहंकार और प्रसन्नता में इसे खेलवाड़ मात्र समझते हुए मूर्खता समझते रहे। किन्तु इसी समय रण का पास-पलट गया। पलक मारते ही तीनों सन्तान नायक तोपचियों पर जा पड़े। तोपचियों के सिर धड़ से कब जुदा हुए, कुछ पता नहीं। उनकी मोहनिद्रा टूटी तब बिजली की तरह तलवार चमकाते हुए भवानन्द स्वयं तोपपर खड़े हो गये और बोले—"बन्देमातरम्।" सहस्र कण्ठों से निकला "बन्दे मातरम्।" इसी समय जीवानन्द ने तोप का मुँह अंगरेजी सैन्य की तरफ कर दिया और वह तोप प्रतिक्षण आग उगलने लगी। अब भवानन्द ने कहा—"जीवानन्द! भाई यह क्षणिक जीत है, अब तुम सन्तानों को लेकर सकुशल पार निकल जाओ। केवल बीस तोप भरने वाले और मृत्यु वरण करने वाले सन्तानों को तोप रक्षा के लिये छोड़ दो।"

ऐसा ही हुआ। बीस सन्तान तोप के इर्द गिर्द आ डटे। शेष समूची सैन्य जीवानन्द, धीरानन्द के साथ पार पहुँचने लगी उस समय भवानन्द क्रुद्ध-कुंजर हो रहे थे पुल की सदरी जगह पर तोप लगा कर वह लगे गोरी वाहिनी का नाश करने दल। के दल तोप छीनने के लिये आगे बढ़ते थे और !मरकर ढ़ेर बन जाते थे। उस समय बीस युवक अजेय थे। यह लोग शीघ्रता इसलिये कर रहे थे कि अँगरेजों की शेष तोपें पहुँचने के पहले

तक की ही यह सारी अजेय लीला है। लेकिन भगवान् ने तो कुछ और ही करना था। एका एक जङ्गल के अन्दर से बहुतोपों का गर्जन सुनाई पड़ने लगा। दोनों ही दल आवाक निस्पन्द होकर देखने लगे कि यह किसकी तोपें हैं?

थोड़ी ही देर में लोगों ने देखा कि जंगल के अन्दर से महेन्द्रकी सत्रह तोपें तीन तरफ से घेरा बाँधे हुई, आग उगलती चली आ रही हैं। अंगरेजों की उस देशी फौजमें महामारी आ गयी। दल के दल साफ होने लगे। यह देख शेष यवन-सिपाही पलायनोद्यत हुए। उधर जीवानन्द और धीरानन्द नेभी जैसे ही वातावरण समझा, तैसे ही उनका सारा क्रोध पलट पड़ा। पलट पड़ी सन्तान सैन्य। वह लोग भागती हुई यवन सैन्य को घेरने और मारने लगे। रह गये अवशिष्ट यही कोई तीस-चालीस गोरे। वह वीर जाति वैसे ही डटी रही। अब भवानन्द ने उनपर धावा बोलने के लिये हाथ उठाया ही था कि जीवानन्द ने कहा,—"भवानन्द! महेन्द्र की कृपा से पूर्ण रणविजय हुई है; अब व्यर्थ इन्हें मारने से क्या फायदा? चलो लौट चलें।

भवानन्द ने कहा—कभी नहीं, जीवानन्द! खड़े होकर तमाशा देखो। एक के भी जिन्दा रहते भवानन्द वापस नहीं हो सकता। जीवानन्द! तुम्हें कसम है, खड़े होकर चुपचाप देखो। मैं अकेले इन सबको मारूँगा।

अभीतक कप्तान् टामस घोड़े पर बंधे हुएथे। भवानन्द ने आक्रमण के समय कहा,—बस अंगरेज को मेरे सामने रखो, पहले यह मरेगा फिर मैं मरूँगा।

टामस हिन्दी समझता था। उसने अपने सिपाहियों को आज्ञा दी "वीरो" मैं तो मरे के सामन हूँ। इंगलैण्ड की मान-रक्षा करना, तुम्हें मातृ भूमि की कसम है, पहले मुझे मारो इसके

बाद प्रत्येक अंगरेज मारकर अपनी जगह मरे।

"दाँय" एक शब्द हुआ और तुरत कप्तान टामस मस्तक में गोली लगाने से मरकर गिर पड़ा। यह गोली उसी के एक सिपाही गोरे द्वारा चलायी गयी थी। इसके बाद ही उन सब ने आक्रमण किया। अब भवानन्द ने कहा,—"आओ भाई! अब कौन ऐसा है जो भीम, नकुल, सहदेव बनकर मेरे साथ मरने को तैयार हो?

इतना कहते ही जीवानन्द, धीरानन्द, फिर क्रमशः कोई पचीस जवान आ पहुँचे। युद्ध हो रहा था, तलावरें चल रही थीं। धीरानन्द भवानन्द के पास थे। भवानन्द ने कहा,—"धीरानन्द! "क्यों? क्या मरने का किसी एक का ठीका है, क्या? यह कहते हुए धीरानन्द ने एक गोरे को आहत किया।

भवा०—यह बात नहीं। लेकिन मरने से तो स्त्री पुत्र का मुँह देखकर दिन बिता न पाओगे?

धीरा०—दल की बात कहते हो? कभी भी नहीं समझे? (धीरानन्द ने आहत गोरे का वध किया)

भवा० – नहीं (इसी समय एक गोरे के आघात से भवानन्द का बांया हाथ कट गया।)

धीरा०—मेरी क्या मजाल थी कि तुम जैसे पवित्रात्मा से यह बातें मैं कहता? मैं सत्यानन्द का प्रेरित चर होकर तुम्हारे पास गया था।

भवानन्द उस समय केवल एक हाथ से युद्ध कर रहे थे। बोले—यह क्या? महाराज का मेरे प्रति अविश्वास?" धीरानन्द ने उनकी रक्षा करते हुए कहा—"कल्याणी के साथ तुम्हारी जितनी बातें हुई थीं, उसे उन्होंने स्वयं अपने कानों से सुना।"

भवा०—यह कैसे?

धीरा०—वह स्वयं वहाँ उपस्थित थे। सावधान, बचो। (भवानन्द ने एक गोरे द्वारा आहत होकर उसे आहत किया वह कल्याणी को गीता पढ़ा रहे थे, उसी समय तुम आ गये। सावधान। (लेकिन इसी समय भवानन्द का दाहना हाथ भी कट गया।)

भवा०—मेरी मृत्यु का समाचार उन्हें देना। कहना, मैं अविश्वासी नहीं हूँ।

धीरानन्द आँसू भरे हुए युद्ध कर रहे थे। बोले—यह वह जानते हैं। उन्होंने मुझसे कह दिया है, भवानन्द के पास रहना. आज वह मरेगा। मृत्यु के समय उससे कहना कि आशीर्वाद देता हूँ. परलोक में बैकुण्ठ प्राप्त होगा।"

भवानन्द ने कहा—"सन्तानों की जय हो। मुझे एकबार मरते समय 'वन्दे मातरम्' गाना तो सुनाओ।"

इस पर धीरानन्द की आज्ञा पाकर समस्त उन्मत्त सन्तानों ने एक साथ 'बन्देमातरम्' गीत गाया। इससे उनकी भुजाओं में दूना बल आ गया। इतनी ही देर में अवशिष्ट गोरों का वध हो चुका था। रणक्षेत्र में शत्रु रह न गये।

इसी समय 'बन्देमातरम्' का गान करते हुए और मन में विष्णुपदक। ध्यान करते हुए भवानन्द ने प्राण त्याग किया।

हा! रमणी रूप लावण्य! इस संसार में तुझे ही धिक्कार।

बारहवाँ परिच्छेद।

रण विजय के उपरान्त नदी तट पर सत्यानन्द को घेरकर विजयी सेना विभिन्न उत्सवों में मत्त हो गयी। केवल सत्यानन्द दुःखी थे, भवानन्द के लिये।

अब तक सन्तानों के पास कोई रणवाद्य नहीं था। अब न मालूम कहाँ से हजारों नगाड़ा, ढोल, भेरी, शहनाई, तूरी, रामसिंघा, दमामा आ गया। तुमुल ध्वनि से नदी तट भूमि, जंगल काँप उठा। इस प्रकार सन्तानों ने बहुत देर तक विजय का उत्सव मनाया। उत्सव के उपरान्त सत्यानन्द स्वामी ने कहा—"आज भगवान सदय हुए हैं; सन्तानों की विजय हुई है; धर्म की जय हुई है। लेकिन अभी एक बात बाकी है। जो हम लोगों के साथ इस उत्सव में शरीक हो न सके, जिन्होंने हमें उत्सव करने के लिये अपने प्राण उत्सर्ग किये हैं; हम लोगों को उन्हें भूलना न चाहिये। विशेषतः उस वीरागएय भवानन्द के लिये जिसके अदम्य रण-कौशल से आज हमारी विजय हुई है; चलो उसके प्रति हम लोग अपना अन्तिम कार्य सत्कार कर आयें।" यह सुनते ही सन्तान सैन्य बड़े समारोह से 'वन्देमातरम्' आदि जय ध्वनि करते हुए, रणक्षेत्र में पहुँचे। वहाँ उन लोगों ने चन्दन चिता का आयोजन कर आदर पूर्वक भवानन्द की लाश उस पर सुलायी और आग लगा दी। इसके बाद वह लोग उस वीर की प्रदक्षिणा करते हुए 'वन्दे मातरम्' का गीत गाते रहे। सन्तान सम्प्रदाय विष्णु भक्त है, वैष्णव सम्प्रदाय नहीं; अतः इनके शव जलाये ही जाते थे।

इसके उपरान्त उस कानन में केवल सत्यानन्द, जीवानन्द, महेन्द्र, नवीनानन्द और धीरानन्द रह गये। शेष चले गये।

यह पांचों ही जन परामर्शार्थ बैठ गये। सत्यानन्द ने कहा— "इतने दिनों से हम लोगों ने जो अपने सर्वकर्म, सर्वसुख त्याग रखा था, आज वह व्रत सफल हुआ है। अब इस प्रदेश में यवन सैन्य रह नहीं गयी है। जो यत्किंचित् बच भी गयी है, वह एक क्षण भी हमारे सामने टिक नहीं सकती। अब तुम लोग क्या परामर्श देते हो ?"

जीवानन्द ने कहा—"चलिये, इसी समय चल कर राजधानी पर अधिकार करें।

सत्या०—मेरा भी ऐसा ही मत है।

धीरा०—सैन्य कहाँ है ?

जीवा०—क्यों, यही सेना ?

धीरा—यही सेना है कहाँ ? किसी को देख रहे हैं ?

जीवा०—स्थान स्थान पर यह लोग विश्राम कर रहे होंगे; डंका पर चोट पड़ते ही इकट्ठे हो जायेंगे।

धीरा—एक आदमी भी पा न सकेंगे।

सत्या०—क्यों ?

धीरा०—सब इस समय लूट पाट में व्यस्त हैं। इस समय सारे गाँव अरक्षित हैं। मुसलमानों के गाँव और रेशम की कोठी लूटने के बाद ही वह लोग घर लौटेंगे। अभी किसी को न पायेंगे, मैं देख आया हूँ।

सत्यानन्द दुखी हुए। बोले—"जो भी हो; इस समय यह समूचा हमारे अधिकार में आ गया है। अब यहाँ कोई हमारा प्रतिद्वन्द्वी नहीं है। अतएव वीरेन्द्र भूमि में तुम लोग अपना सन्तान-राज्य प्रतिष्ठित न करो। प्रजा से कर अदा करो और सैन्य संग्रह करो। हिन्दुओं का राज्य हो गया है, यह सुन कर बहुतेरी सैन्य सन्तान झण्डे के नीचे आ जायेंगी।"

इस पर जीवानन्द आदि ने सत्यानन्द को प्रणाम किया और कहा—"यदि आज्ञा हो, महाराजाधिराज! तो हम लोग इसी जंगल में आप का सिंहासन स्थापित कर सकते हैं।"

सत्यानन्द ने अपने जीवन में यह प्रथम बार कोप प्रकाश किया। बोले—"क्या कहा? क्या मुझे केवल कच्चा घड़ा ही समझ लिया है? हम लोग कोई राजा नहीं हैं, हम केवल संन्यासी हैं। इस प्रदेश के राजा स्वयं बैकुंण्ठनाथ हैं, यहाँ प्रजातन्त्रराज्य स्थापित होगा। नगर अधिकार के बाद तुम्हीं लोग कार्यकर्ता होगे। मैं तो ब्रह्मचार्यशक्ति के अतिरिक्त और कुछ भी स्वीकार न करूंगा। अब तुम लोग अपने अपने काम में लगो।"

इस पर चार जन प्रणाम करने के बाद उठ गये। सत्यानन्द ने इशारे से महेन्द्र को बैठ रहने के लिये कहा। अतः तीनों जन चले गये। अब सत्यानन्द ने महेन्द्र से कहा—"तुम लोगों ने विष्णुमण्डप में शपथ ग्रहण कर सन्तानधर्म स्वीकार किया था। भवानन्द और जीवानन्द दोनों ने ही प्रतिज्ञा भंग की है। भवानन्द ने स्वीकृति प्रायश्चित्त कर लिया। हमें इस बात का भय है कि कहीं जीवानन्द भी किसी दिन प्रायश्चित्त न कर बैठें। लेकिन मेरा किसी निगूढ़ कारण वश विश्वास है, कि वह अभी ऐसा न करेगा। अकेले तुम्हीं ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की है। अब सन्तानों का कार्योद्धार हो गया है। तुम्हारी प्रतिज्ञा थी कि जब तक सन्तानों का कार्योद्धार न होगा स्त्री, कन्या का मुँह न देखोगे। अब कार्योद्धार हो चुका है अतः तुम फिर संसारी हो सकते हो।"

महेन्द्र की आँखों से आँसू की धारा बह निकली। बड़े कष्ट से महेन्द्र ने कहा—महाराज! किसे लेकर संसारी बनूँ? स्त्री ने आत्महत्या कर ली, कन्या कहाँ है, पता नहीं, कहाँ कहाँ खोजता

फिरूँगा ? आप ने कहा था. कन्या जीवित है, बस केवल इतना ही जानता हूँ। और कुछ भी नहीं जानता।"

इस पर सत्यानन्द ने नवीनानन्द को बुलाकर कहा— 'महेन्द्र यह नवीनानन्द गोस्वामी हैं—बहुत ही पवित्रचेता और मेरे परम प्रिय शिष्य ! तुम्हारी कन्या की खोज कर देंगे।" यह कह कर सत्यानन्द ने शान्ति से कुछ इशारे में कहा। शान्ति समझ कर प्रणाम कर विदा हुआ चाहती थी, इसी समय महेन्द्र ने कहा—"तुम्हारे साथ कहाँ मुलाकात होगी ?"

शान्ति ने कहा—"मेरे आश्रम में आइये। यह कहकर शांति आगे आगे चली।

महेन्द्र भी सत्यानन्द की पदवन्दना कर विदा हुए और शांति के साथ साथ उसके आश्रम में उपस्थित हुए। उस समय काफी रात बीत चुकी थी। फिर भी; विश्राम न कर शान्ति ने नगर की तरफ यात्रा की।

सबके चले जाने पर सत्यानन्द मिट्टी पर प्रणत होकर भगवान की वन्दना और याद करने लगे। पौ फट रही थी। इसी समय किसी ने आकर उनके मस्तक का स्पर्श कर कहा—"मैं आ गया हूँ !"

ब्रह्मचारी ने उठकर और चकित व्यग्रभाव से कहा—"आप आ गये ? क्यों ?" जो आये थे, उन्होंने कहा—"दिन पूरे हो गये।" ब्रह्मचारी ने कहा—"हे प्रभु ! आज क्षमा कीजिये। आगामी माघी पूर्णिमा को मैं आप की आज्ञा पालन करूँगा।"

चतुर्थ खण्ड।

पहला परिच्छेद।

उस रात को हरिध्वनि के तुमुल नाद से प्रदेश भूमि परिपूर्ण हो गयी। सन्तानों का दल का दल उस रात यत्र तत्र 'बन्देमातरम्' और 'जय जगदीश हरे' का गाना गाता हुआ घूमता रहा। कोई शत्रु सेनाका शस्त्र तो कोई वस्त्र लूटने लगा। कोई मृतदेह के मुँहपर पदाघात करने लगा, तो कोई दूसरी तरह का उपद्रव करने लगा। कोई गाँव की तरफ तो कोई नगर की तरफ पहुँच कर राहगीरों और गृहस्थों को पकड़ कर कहने लगा—"वन्देमातरम्' कहो, नहीं तो मार डालूँगा। कोई मैदा, चीनी की दूकान लूट रहा था। तो कोई ग्वालों के घर पहुँच कर हाँड़ी भर दूध ही छीन कर पीता था। कोई कहता—"हम लोग ब्रज गोप पहुँच गये; गोपियाँ कहाँ हैं? उस एक ही रात को गाँव गाँव में, नगर-नगर में महा कोलाहल मच गया। सभी चिल्ला रहे थे,—"मुसलमान हार गये, देश हम लोगों का हो गया, भाइयों! हरिहरि चिल्ला कहो"—गाँव में मुसलान दिखाई पड़ते ही लोग खदेड़ कर मारते थे। बहुतेरे लोग दल बद्ध होकर मुसलमानों की बसती में पहुँच कर घरों में आग लगाने और माल लूटने लगे। अनेक यवन निहत हुए; अनेक मुसलमान दाढ़ी मुड़वाकर देह में भस्मी रमाकर रामनाम जपने लगे। पूछने पर कहते—हम हिन्दू हैं।

त्रस्त दल का दल मुसलमानों का नगर की तरफ भागा।

राजकर्मचारी व्यस्त हो गये। अवशिष्ट सिपाहियों को सुसज्जित कर नगर रक्षा के लिये स्थान स्थान पर नियुक्त किया जाने लगा। नगर के किले के स्थान स्थान पर चरिखाओं पर और फाटक पर सिपाही रक्षा के लिये एकत्रित हो गये। नगर के सारे लोग समूची रात जाग कर "क्या होगा—क्या होगा" करते रात बिताने लगे। हिन्दू कहने लगे—"आने दो आने दो; संन्यासियों को आने दो—हिन्दुओं का राज्य—भगवान् करें—प्रतिष्ठित हो।" मुसलमान कहने लगे—"इतने रोज के बाद क्या बेवाक कुरानशरीफ झूठा हो गया; हम लोगों ने पाँचों वक्त नमाज अताकर क्या किया, जब हिन्दुओं की फतह हुई। सब झूठ है।" इस तरह कोई रोता हुआ, तो कोई हँसता हुआ बड़ी उत्कण्ठा से रात बिताने लगा।

यह खबर कल्याणी के कानों में भी पहुँची। आवाल वृद्ध वनिता किसी से भी बात छिपी न रही। कल्याणी ने मन ही मन कहा—"जय जगदीश! आज तुम्हारा कार्य सिद्ध हुआ। आज मैं स्वामि दर्शन के लिये यात्रा करूँगी। हे प्रभो! आज मेरी सहायता करो।"

गहरी रात को कल्याणी शय्या से उठी और उसने पहले खिड़की खोलकर राह देखी। शून्य राह पड़ी हुई थी। कोई राह में न था। तब उसने धीरे से दर्वाजा खोलकर गौरी देवी का घर त्यागा। शाहीराहपर आकर उसने मन-ही-मन भगवान् को स्मरण कर कहा—"देव! आज पदचिह्न में दर्शन करा दो।"

कल्याणी नगर के किनारे पहुँची। पहरे वाले ने आवाज दी, "कौन जाता है?" कल्याणी ने डर कर उत्तर दिया—"मैं औरत हूँ।" पहरेवाले ने कहा—"जाने का हुक्म नहीं है। यह आवज जमादार के कान में पहुँची। उसने कहा—"जाने की

मनाही नहीं है; जाने की मनाही नहीं है; आने की मनाही है।" यह सुनकर पहरे वाले ने कहा—"जाने की मनाही नहीं है. भाई! जाओ; लेकिन आज रात को बड़ी आफत है। कौन जाने भाई! किसी आफत में पड़ जाओ—डाकुओं के हाथ में पड़ जाओ. मैं नहीं जानता। आज तो न जाना ही अच्छा है।"

कल्याणी ने कहा—"बाबा! मैं भिखारिणी हूँ. मेरे पास एक कौड़ी भी नहीं है। डाकू मुझे पकड़कर क्या करेंगे?"

पहरेवाले ने कहा—उम्र तो है भाई जी! उम्र तो है न। दुनिया में वही तो जवाहरात है। बल्कि हमी डाकू हो सकते हैं।" कल्याणी ने देखा बड़ी विपद् है, वह धीरे से सरक गयी और फिर तेजी से आगे बढ़ी। पहरेदार ने देखा कि औरत रसिक मिजाज नहीं थी, लाचार होकर पहरेपर बैठा गाँजे का दम लगाकर ही सन्तुष्ट हो गया।

उस रात राह में दल के दल घूम रहे थे। कोई मार मार करता है, तो भागो भागो चिल्लाता है। कोई हँसता है, कोई रोता। कोई राहमें किसीको देखकर पकड़ लेता है। कल्याणी बड़ी विपद्में पड़ीराह मालूम नहीं; और फिर किससे पूछ ही सकती है। केवल छिपती हुई राह चलने लगी। छिपते छिपते एक दल विद्रोही के हाथ में पड़ गयी। वह लोग चिलाकर पकड़ने दौड़े। कल्याणी प्राण लेकर जंगल के अन्दर घुसकर भागी। वह सब शोर मचाते हुए पकड़ने के लिये पीछे दौड़े। आखिर एक ने अंचल पकड़ लिया—बोला—"वाह री चन्द्रमुखी।" इसी समय एक और आदमी अकस्मात् पहुँच गया और अत्याचारी को उसने एक लाठी जमायी। वह आहत होकर भागा। परित्राणकर्त्ता का वेश संन्यासियों का था। कृष्ण जिसकी छाती

ढँकी हुई थी ! उसने कल्याणी से कहा—"तुम भय न करो। मेरे साथ आओ—कहाँ जाओगी ?"

कल्याणी—पदचिह्न।

आगन्तुक चौंक उठा; विस्मित हुआ। पूछा—"क्या कहा ? पदचिह्न ?" यह कहकर वह कल्याणीके दोनों कन्धों हाथ रखकर गौर से चेहरा देखने लगा।

कल्याणी अकस्मात् पुरुष स्पर्श से भयभीत रोमांचित होकर रोने लगी। इतनी हिम्मत नहीं कि भाग सके। आगन्तुक ने भरपूर देख लेने के बाद कहा—"ओहो, पहचान गया, तुम्ही कल्याणी डायन हो ?"

कल्याणी ने भयविह्वला हो- पूछा,—"आप कौन हैं ?"

आगन्तुक ने कहा—"मैं तुम्हारा दासानुसास हूँ (हे सुन्दरी ! मुझ पर प्रसन्न हो)"

कल्याणी बड़ी ही तेजीसे वहां से हटकर गर्जन कर बोली- "क्या यह अपमान करने के लिये ही आपने मेरी रक्षा की थी ? देखती हूँ ब्रह्मचारी का वेश है, ब्रह्मचारियों का क्या यही धर्म है ? आज मैं निःसहाय हूँ, नहीं तो तुम्हारे चेहरे पर लात लगाती।

ब्रह्मचारी ने कहा,—"अयि स्मितबन्दने ! मैं बहुत दिनों से तुम्हारे पुष्प कोमल शरीर के आलिंग्नकी कामना कर रहा हूँ।" "यह कह कर दौड़कर ब्रह्मचारी ने कल्याणी को पकड़ लिया और जबर्दस्ती छाती से लगा लिया। अब कल्याणी खिल खिलाकर हँस पड़ी। बोली, —"यह तुम्हारा कपाल है। पहले ही कह देना था 'कि भाई ! मेरी भी यही दशा है। शान्ति ने पूछा, —क्यों भाई ! महेन्द्र की खोज में चली हो ?

कल्याणी ने कहा,—'तुम कौन हो ? तुम तो सब कुछ जानते हो ?

शान्ति बोली,—"मैं ब्रह्मचारी हूँ सन्तान सेना का अधिनानायक—घोरतर वीर पुरुष ! मैं सब जानता हूँ। आज राह में जैसा सिपाहियों का दौरात्म है, आज तुम पद चिन्ह जा न सकोगी।

कल्याणी रोने लगी।

शान्ति ने त्योरी बदलकर कहा,—"डरती क्यों हो ? हम अपने नयनबाणों से हजारों का वध कर सकते हैं- चलो, पद-चिन्ह चलें।

कल्याणी ने ऐसी बुद्धिमती स्त्री की सहायता पाकर मानो हाथ बढ़ाकर स्वर्ग पा लिया। बोली, —"तुम जहाँ कहोगी वहीं चलूँगी।

शान्ति कल्याणी को लेकर जंगली राह से चल पड़ी।

दूसरा परिच्छेद

जब आधी रात को शान्ति अपना आश्रम त्यागकर नगर की तरफ चली, तो उस समय जीवानन्द वहाँ उपस्थित थे। शान्ति ने जीवानन्द से कहा,—"मैं नगर की तरफ जाती हूँ। महेन्द्र की स्त्री को ले आऊँगी। तुम महेन्द्र से कह रखो, कि तुम्हारी स्त्री जीवित है।

जीवानन्दने भवानन्द से कल्याणी के जीवन की सारी वातें सुनी थीं और उसका वर्तमान वास्थान भी सुन चुके थे। क्रमशः वह सारी वातें महेन्द्र को सुनाने लगे।

पहले तो महेन्द्रको विश्वास न हुआ। अन्त में अपार आनन्द से अभिभूत आवाक हो रहे।

उसी रातके बीतने पर सवेरे शान्तिकी सहायता से महेन्द्र के साथ कल्याणी की मुलाकात हुई। निस्तब्ध जंगल के वीच घतिघनी शालतरु श्रेणी की अंधेरी छाया के बीच, पशु पक्षियों की निद्रा टूटने के पहले उन लोगों का परस्पर मिलन हुआ। म्लान अरण्य के फूटने वाली पहली आभामयी किरणे और नक्षत्र राज ही साक्षी थे। दूर शिला संघर्षिणी नदी का कलकल प्रवाह हो रहा था, तो कहीं अरुणोदय लालिमा से प्रफुल्लहृदय कोकिल की कूह ध्वनि सुनाई पड़ जाती थी।

क्रमशः एक प्रहर दिन चढ़ा। वहाँ शान्ति और जीवानन्द आये। कल्याणी ने शान्ति से कहा—"मैं आप लोगों के हाथ बिना मूल्य के बिक चुकी हूँ। मेरी कन्या का पता ला देकर मेरे प्रति उस उपकार को सम्पूर्ण कीजिये।"

शान्ति ने जीवानन्द के चेहरे की तरफ देखकर कहा—"मैं अब सोऊँगा। आठ पहर वीते मैं बैठा तक नहीं। आखिर मैं भी पुरुष हूँ!"

कल्याणी जरा मुस्करा दी। जीवानन्द ने महेन्द्र की तरफ देखकर कहा—"यह भार मेरे ऊपर रहा। आप लोग पदचिह्न की यात्रा कीजिये—वहीं आप की कन्या पहुँचा दूँगा।"

जीवानन्द मसईपुर निमाई के पास से लड़की लाने चले। कार्य सहल न था।

पहले तो निमाई वात ही खा गयी। इधर उधर ताका, फिर

एकबारगी उस का मुँह फूल कर कुप्पा हो गया। इसके बाद वह रो पड़ी बोली—"मैं लड़की न दूँगी।"

निमाई अपनी उल्टी हथेलियों से आँसू पोंछने और घूरने लगी। जीवानन्द ने कहा—"अरे बहन! तो रोती क्यों है? ऐसा दूर भी तो नहीं है—न हो, बीच-बीच उन लोगों के घर जाकर लड़की देख आया करना।"

निमाई ने होंठ फुलाकर कहा—"तो तुम लोगों की लड़की है, ले क्यों नहीं जाते? मुझसे क्या मतलब?" यह कहकर निमाई छमछमाती हुई गयी और लड़की को उठा लाकर जीवानन्द के पैर के पास पटक कर वहीं बैठकर रोने लगी। अतः जीवानन्दी की ओर कोई फुसलाने की राह न देखकर इधर उधर की बातें करने लगे। लेकिन निमाई का क्रोध न गया। निमाई उठाकर सुकुमारी के पहनने के कपड़े, उसके खेलने के खिलौने बोझ के बोझ लाकर जीवानन्द के सामने पटकने लगी। सुकुमारी स्वयं उन सबको बटोरने लगी। उसने निमाई से पूछा—"क्यों माँ! कहाँ जाऊँगी माँ?" अब निमाई सह न सकी। उसने सुकुमारी को गोद में उठा लिया और चली गयी।

तीसरा परिच्छेद।

पदचिह्न के नये दुर्ग में आज बड़े सुख से महेन्द्र, कल्याणी जीवानन्द, शान्ति, निमाई के पति और सुकुमारी सब एकत्रित हैं। सब आज सुख में विभोर हैं—आनन्दमग्न हैं। शान्ति

जिस रात कल्याणी को ले आई, उसी रात उसने कह दिया था कि वह अपने पति महेन्द्र से यह न कहे कि नवीनानन्द जीवानन्द की स्त्री है। एक दिन कल्याणी ने उसे अन्तः पुर में बुलवा भेजा। नवीनानन्द अन्तःपुर में घुस गया। उसने प्रहरियों की न सुनी।

शान्ति ने कल्याणी के पास आकर पूछा—"क्यों बुलाया है।

क०—पुरुष वेश में कितने दिनों तक रहेगी? न मुलाकात हो पाती है, न बातें होती हैं। मेरे पति के सामने तुम्हें प्रकट होना पड़ेगा।

नवीनानन्द बड़े चिन्ता में डूब गये। कुछ देर तक बोले ही नहीं। अन्त में बोले—"इसमें अनेक विघ्न हैं, कल्याणी!"

दोनों में इसी तरह बातें होने लगीं। इधर जो प्रहरी नवीननान्द को जोर देकर अन्तःपुर में जाने से मना कर रहे थे, उन्होंने महेन्द्र से जाकर कहा कि नवीननान्द जबर्दस्ती मना करने पर आकर चले गये हैं। कौतूहल वश महेन्द्र भी अन्तः पुर में गये। महेन्द्र ने सीधे कल्याणी के कमरे में जाकर देखा कि नवीनानन्द कमरे में खड़े हैं और शान्ति उनके शरीर के बाघम्बर की गाँठ खोल रही है। महेन्द्र बड़े अचम्भे में आये—बहुत ही नाराज हुए।

नवीनानन्द ने उन्हें देख हँस कर कहा—"क्यों, गोस्वामी जी! सन्तान सन्तान में अविश्वास?"

महेन्द्र ने पूछा—"क्या भवानन्द विश्वासी थे?"

नवीनानन्द ने आखें दिखाकर कहा—"कल्याणी क्या भवानन्द के शरीर पर हाथ रखकर बाघ का छाल खोलती थी? यह कहते हुए शान्ति ने कल्याणी का हाथ दबाकर पकड़ लिया बाघम्बर खोलने न दिया।

म०—तो इससे क्या हुआ ?

न०—मुझपर अविश्वास कर सकते हैं, लेकिन कल्याणी पर कैसे अविश्वास कर सकते हैं ?

अब महेन्द्र अप्रतिभ हुए। बोले—"कहाँ, अविश्वास कब मैं करता हूँ ?"

न०—नहीं, तो मेरे पीछे अन्तपुर में क्यों आ उपस्थित हुए ?"

म०—कल्याणी से कुछ बातें करनी थी; इसीलिये आया हूँ।

न०—तो इस समय जाइये। कल्याणी के साथ मुझे भी कुछ बातें करनी हैं। आप चले जाइये, मैं पहले बात करूँगा। आप का तो घर है, आप जब चाहें, आकर बातें कर सकते हैं। मैं तो बड़े कष्ट से आ पाया हूँ।

महेन्द्र बेवकूफ बन गये। कुछ भी समझ न पाते थे। यह सब बातें तो अपराधियों जैसी नहीं हैं। कल्याणी का भाव भी विचित्र है। वह भी तो अविश्वासिनी की तरह भागी नहीं। न डरी ही, न लज्जित ही हुई। वरं मृदु मुस्कराहट से मुस्करा रही है। वही कल्याणी, जिसने पेड़ के नीचे सहज ही विष खा लिया—वह क्या अपराधिनी हो सकती है ? महेन्द्र के मन में ही यही तर्क वितर्क हो रहा है। इसी समय शान्ति ने महेन्द्र की यह दुरवस्था देखकर कुछ मुस्कराकर उसने कल्याणी की तरह एक तरफ एक विलोल कटाक्षपात किया। सहसा अन्धकार मिट गया भला ऐसा कटाक्षपात भी कभी पुरुष कर सकते हैं। समझ गये कि नवीनानन्द कोई स्त्री है। फिर भी शक था। उन्होंने साहस बटोरा और आगे बढ़कर एक झटके में नवीनानन्द की दाढ़ी खींच ली। दाढ़ी मूँछ हाथ में आ गयी। इसी समय अवसर पाकर

कल्याणी ने बाघम्बर की गाँठ खोल दी। पकड़ी जाकर शान्ति शर्माकर शिर नीचाकर खड़ी रह गयी।

अब महेन्द्र ने शान्ति से पूछा—"तुम कौन हो?"

शा०—श्रीमान् नवीनानन्द गोस्वामी।"

म०—वह तो ठगी थी, तुम तो स्त्री हो?"

शा०—यह तो देखते ही हैं आप।

म०—तब एक बात पूछूँ—तुम स्त्री होकर जीवानन्द के साथ हर समय क्यों रहती थीं?

शा०—यह बात आप से न बताऊँगी।

म०—तुम स्त्री हो, यह जीवानन्द स्वामी जानते हैं?

शा०—जानते हैं।

यह सुनकर विशुद्धात्मा महेन्द्र बहुत दुखी हुए।

यह देखकर अब कल्याणी चुप रह न सकी। बोली—"यह जीवानन्द स्वामी की धर्मपत्नी शान्ति देवी हैं।

एक क्षण के लिए महेन्द्र का चेहरा प्रसन्न हो उठा। इसके बाद ही उनका चेहरा फिर गंभीर हो गया। कल्याणी समझ गयी, बोली—"यह पूर्ण ब्रह्मचारिणी हैं।"

चौथा परिच्छेद

उत्तर बङ्गाल मुसलमानों के हाथ से निकल गया। यह बात मुसलमान मानते नहीं दलील पेश करते हैं कि कितने ही डाकुओं का दौरात्म्य है—शासन तो हमारा ही है। इस तरह कितने वर्ष बीत जाते, नहीं कहा जा सकता। लेकिन भगवान्

की इच्छा से वारेन हेस्टिंग्स इसी समय कलकत्ते में गवर्नर जेनरल होकर आये। वारेन हेस्टिंग्स मन सन्तोष वाले आदमी न थे; अन्यथा भारत में अंगरेज साम्राज्य स्थापित कर न पाते। उन्होंने तुरत सन्तान दमनार्थ मेजर एडवर्ड नाम के एक दूसरे सेनापति को खड़ा कर दिया। मेजर ताजी गोरी फौज लेकर तैयार हो गये।

एडवर्ड ने देखा, कि यह युरोपीय युद्ध नहीं है। शत्रुओं की सेना नहीं, नगर नहीं, राजधानी नहीं, दुर्ग नहीं, फिर भी, सब उनके अधीन है। जिस दिन जहाँ, ब्रिटिश सेना का पड़ाव पड़ा उस रोज वहां ब्रिटिश अधिकार रहा, दूसरे दिन शिविर टूटते ही फिर 'बन्दे मातरम्' की ध्वनि उपस्थित होने लगी। साहब सर पटक कर रह गये, पर यह पता न लगा कि एक क्षण में कहाँ से टिड्डियों की तरह विद्रोही सैन्य इकट्ठी हो जाती हैं और ब्रिटिश अधिकृत गाँव को फूँक देती और रक्षक छोटी टुकड़ियों का सफाया कर फिर गायब हो जाती है। बड़ी खोज के बाद उन्हें मालूम हुआ कि पदचिन्ह में सन्तानों ने दुर्ग निर्माणकर रखा है और वहीं उनका धनागार सुरक्षित है। वहीं उनका अस्त्रागार और वारुद खाना भी है। अतः मेजर एडवर्ड ने उसी दुर्ग पर अधिकार करना युक्ति संगत समझा।

खुफियों द्वारा वह पता पाने लगा कि पदचिन्ह में कितनी सन्तान सेना रहती है। उसे जो समाचार मिला। उससे उस ने दुर्ग पर आक्रमण करना उचित न समझा। मन-ही-मन उसने एक अपूर्व कौशल की रचना की।

माघी पूर्णिमा सामने उपस्थित थी। उनके शिविर के निकट ही नदी तट पर बहुत बड़ा मेला लगेगा। इस बार मेले की बड़ी तैयारी है। मेले में सहज ही कोई एक लाख आदमी

एकत्रित होते हैं। इस बार वैष्णव राजा हुए हैं—शासक हुए हैं—अतः वैष्णवों ने इस बार मेले में आनेका संकल्प कर लिया है। पदचिन्ह के रक्षक भी अवश्य ही मेले में पहुँचेंगे, इसकी कल्पना मेजरने कर ली। उन्होंने निश्चय किया कि पद-चिन्ह पर उसी समय आक्रमणकर अधिकार करना चाहिए।

यही सोचकर मेजर ने अफावह उड़ा दी वह मेले पर आक्रमण करेंगे; उस दिन वहाँ तमाम वैष्णव सन्तान इकट्ठे रहेंगे, अतः एक बार में ही समूल विध्वंस उनका होगा। वैष्णव मेला होने न देंगे।

यह खबर गाँव गाँव में प्रचारित की गयी। अतः स्वभवतः जो सन्तान जहाँ था वह वहीं से अस्त्र ग्रहण कर मेले की रक्षा के लिये चल पड़ा। सभी सन्तान माघी पूर्णिमा वाले दिन तट पर आकर सम्मिलित होते। मेजर साहब ने जो जाल फेंका था, वह सही होने लगा। अंगरेजों के सौभाग्य से महेन्द्र ने भी उस जाल में पाँव डाल दिया। महेन्द्र ने पदचिन्ह में थोड़ी सी सेना छोड़कर शेष समूची सैन्य के साथ मेले के लिये प्रयाण किया।

यह सब होने के पहले ही जीवानन्द और शान्ति पदचिन्ह से बाहर निकल गये थे। उस समय तक युद्ध की कोई बात थी नहीं, अतः युद्ध की तरफ उनका कोई ध्यान भी न था। माघी पूर्णिमा के पवित्र दिन पवित्र जल में प्राण विसर्जन कर वह लोग अपना प्रायश्चित्त करेंगे, यह पहले से निश्चित हो चुका था। राह में जाते जाते उन्होंने सुना कि मेले में समस्त सन्तानों पर अंगरेजों का आक्रमण होगा, भयानक युद्ध होगा। इसपर जीवानन्द ने कहा,—"तब चलो, युद्ध में ही प्राण विसर्जन करेंगे।

वह लोग जल्दी-ज़ल्दी चले। एक जगह रास्ता टीले के ऊपर

से गया था। टीले पर चढ़कर वीर-दम्पती ने देखा कि नीचे थोड़ी दूर पर अंगरेजों का शिविर पड़ा हुआ है। शान्ति ने कहा, "मरने की बात इस समय ताक पर रखो, बोलो,—'बन्दे-मातरम्'।"

पाचवाँ परिच्छेद।

इस पर दोनों ने ही चुपके-चुपके कुछ सलाह की। सलाह के बाद जीवानन्द पास के जंगल में छिप गये। शान्ति एक दूसरे वन में घुसकर अद्भुत काण्ड में प्रवृत्त हुई।

शान्ति मरने जा रही थी, लेकिन उसने मृत्यु के समय स्त्री वेश धारण करने का निश्चय किया था। महेन्द्र ने कहा था कि उसका पुरुषवेश ठगती है। ठगी करते हुए मरना उचित नहीं। अतः वह साथ में अपना पिटारा लायी थी! उसमें उसकी पोषाक रहती थी। इस समय नवीनानन्द पिटारा खोलकर अपना वेश परिवर्तन करने बैठे।

चिकने बालों को पीठ पर फहराये हुई, उसपर खैरका टीका फटीका लगाकर नवीन लता पुष्पोंसे सर ढंककर शान्ति खासी वैष्णवी बन गयी। सारंगी उसने हाथ में ले ली। इस तरह वह अँगरेज शिविर में पहुँच गयी। काली मूँछों वाले सिपाही उसे देखकर पागल हो उठे! चारों तरफ से लोगों ने उसे घेरकर गवाना शुरू किया। कोई ख्याल गवाता तो कोई टप्पा, कोई गजल। किसीने दाल दिया किसी ने चावल, तो किसी ने मिठाई किसी ने पैसे

दिये, तो किसी ने चवन्नी ही दे दी। इसी तरह वैष्णवी अपनी आँखों से शिविर का हाल-चाल देखती घूमने लगी। सिपाहियों ने पूछा,—"अब कब आओगी? "वैष्णवी ने कहा,—"कैसे बताऊँ; मेरा घर बड़ी दूर है। "सिपाहियों ने पूछा,—"कितनी दूर? "वैष्णवी ने कहा,—"मेरा घर पदचिन्ह में है। एक सिपाही ने सुना था कि मेजर साहब पदचिन्ह की खबर लिया करते हैं। तुरत वह वैष्णवी को मेजर साहब के शिवर में ले गया। मेजर साहब को देखकर वैष्णवी ने एक मधुर कटाक्ष से वाण छोड़ा मेजर साहब का तो सर चक्कर खा गया। वैष्णवी तुरत खंजड़ी बजाकर गाने लगी,

"म्लेच्छ निबहनिय ने कलयसि करवालम्।"

साहब ने पूछा—"ओ बीबी! टोमारा घड़ कहाँ?"

बीबी बोलीं—"मैं बीबी नहीं हूँ; वैष्णवी हूँ। घर पदचिन्ह में है।

साहब where is that adsin padsin? होवां एक ठो घर हाय?

वैष्णवी बोली—"घर? बहुत से घर हैं।"

साहब—घर नई—गर—गर, नई—गर—

शान्ति०—साहब! मैं समझ गयी, गढ़ कहते हो?

साहब—देस—देस, गर—गर। हाय?

शान्ति०—गढ़ है। भारी किला है।

साहब—केहा आदमी।

शान्ति०—गढ़ में कितने लोग रहते हैं? करीब बीस पचीस हजार।

साहब—नन्सेन्स—एक टो केल्ला में दो चार हजार रहने सकटा। अवी हुई पर हाय कि चला गिया?

शान्ति०--वह सब जायँगे।

साहब—मेला में टोम कब आया होंआ से ?

शान्ति—कल आये हैं साहब !

साहब—ओ लोग आज निकेल गिया होगा।

शान्ति मन ही मन सोच रही थी कि "तुम्हारे बाप के श्राद्ध के लिये यदि मैंने भात न चढ़ाया, तो मेरी रसिकता व्यर्थ है। कितने स्यार तेरे मुण्ड खायेंगे, मैं देखूँगी।" प्रकाश्य रूप में बोली—"साहब ! ऐसा हो सकता, ऐसा हो सकता है। आज चला गया हो सकता है। इतनी खबर मैं नहीं जानती। वैष्णवी हूँ, माँगकर खाती हूँ--गाना गाती हूँ, तब आधा पेट भोजन पाती हूँ। इतनी खबर मैं क्या जानूँ ? बकते बकते गला सूख गया पैसा दो, मैं जाऊँ। और अच्छी तरह बखशीस दो, तो परसो खबर दूँगी।"

साहब ने झन से एक रुपया फेंकते हुए कहा—"परसों नहीं, बीबी !"

शान्ति बोली—दुर बेटा ! वैष्णवी कहो, बीबी क्या ?

साहब—परसू नहीं; आज रात को खबर मिलने चाही।

शान्ति—बन्दूक माथे के पास रखकर, नाक में कड़वा तेल छुड़वाकर सोओ। आज ही मैं दस कोस राह तयकर जाऊँ और आज ही फिर लौट आऊँ—और तुम्हें खबर दूँ। घास लेटी कहीं के !

साहब—घासलेटो किसको बोलता ?

शान्ति—जो भारी वीर, जेनरल होता है।

साहब—ग्रेट जेनरल हाय होने सक्ता हाम—क्लाइबका माफिक। लेकिन आज ही हमको खबर मेलना चाही। सौ रूपी बकसीस देंगे।

शान्ति—सौ दो, हजार दो, बीस हजार दो पर आज रात भर में मैं इतना नहीं चल सकती।

साहब—घोड़े पर ?

शान्ति—घोड़ा चढ़ना जानती तो तुम्हारे तम्बू में आकर भीख मांगती ?

साहब—एक दुसरा आदमी ले जायेगा।

शान्ति—गोद में बैठाकर ले जायगा, मुझे लज्जा नहीं है ?

साहब—केया मुस्किल। पान सो रूपी देगा।

शान्ति—कौन जायगा तुम खुद जायगा ?

इसपर एडवर्ड ने पास में खड़े एक युवक अंगरेज को दिखा कर कहा,—"लिण्डेला तुम जाओ।" लिण्डेल ने शान्ति का रूप यौवन देखकर कहा—"बड़ी खुशी से।

इसके बाद ही बड़ा जानदार अरबी घोड़ा सजकर आ गया। लिण्डेल भी तैयार हो गया। शान्ति को पकड़ कर वह घोड़े पर बैठाने चला। शान्ति ने कहा—"छिः इतने आदमियों के सामने ? क्या मुझे लज्जा नहीं है ? आगे चलो घोड़ेपर बाहर चल कर चढ़ेंगे।

लिण्डेल घोड़े पर चढ़ गया। घोड़ा धीरे-धीरे चला। शान्ति-पीछे-पीछे पैदल चली। इस तरह वह लोग छावनी के बाहर आये!

शिविर के बाहर एकान्त आनेपर शान्ति लिण्डेल के पैर पर पाँव रखकर एक छलांग में पीठपर पहुँच गयी। लिण्डेल ने हंस कर कहा,—तुम तो पक्का घोड़सवार है।

शान्ति बोली,—"हम लोग ऐसे पक्के घुड़ सवार हैं कि तुम्हारे साथ चढ़ने में लज्जा लगती है, छिः रकाब के सहारे तुम लोग चढ़ते हो।

मारे शान के लिण्डेल ने रकाब से पैर निकाल लिया। इसी समय शान्ति ने पीछे से लिण्डेल का गला पकड़ एक धक्का दिया। वह घोड़े पर से तड़ाका गिरा। घोड़ा भी भड़क उठा। फिर क्या था ? शान्ति ने एक एड़ लगाई और घोड़ा हवा से बातें करने लगा। शान्ति चार वर्षों तक सन्तानों के साथ रह कर पक्की घुड़ सवार हो गयी थी। बिना सीखे क्या जीवानन्द का साथ दे सकती ? लिण्डेल का पैर टूट गया और वह कराहने लगा। शान्ति हवा में उड़ती जाती थी।

जिस वन में जीवानन्द छिपे हुए थे, वहाँ पहुँच कर शान्ति ने जीवानन्द से सारा समाचार सुनाया। जीवानन्द ने कहा,—तो मैं शीघ्र जाकर महेन्द्र को सतर्क करूँ। तुम मेले में जाकर सत्यानन्द को खबर दो, तुम घोड़े पर जाओ, ताकि प्रभु शीघ्र समाचार पा सकें। इस तरह दोनों आदमी दो तरफ रवाना हुए यह कहना व्यर्थ है कि शान्ति फिर नवीनानन्दके रूपमें हो गयी।

छठाँ परिच्छेद।

एडवर्ड भी पक्का अंगरेज जेनरल है। छोटी घाटी में उसके आदमी थे शीघ्र ही उन्हें खबर मिली कि उस वैष्णवी ने लिन्डेल को घोड़े से गिराकर स्वयं रास्ता लिया। सुनते ही एडवर्ड ने हुक्म दिया Animp of satan ! Staeke the tents. "

खटाखट तम्बुओं के खूँटों पर हथौड़े पड़ने लगे। मेघरचित अमरावती की तरह सवार घोड़ों पर और पदातिक पैदल चलने

को तैयार हो गये। हिन्दू, मुसलमान, मद्रासी, गोरे बन्दूक कन्धे पर लिये मच-मच चल पड़े। तोपें खच्चरों द्वारा खींची जाकर घरर-घरर करती चल पड़ीं।

इधर महेन्द्र सन्तान-सैन्य के साथ मेले की तरफ अग्र-सर है। उसी दिन शाम को महेन्द्र ने सोचा अन्धेरा हो चला शिविर डलवा देना चाहिये।

उसी समय पड़ाव डाल देना ही उचित जान पड़ा। सन्तानों का शिविर कैसा ? पेड़ के तनों से लगकर छाया में सब चित-पट सो रहे। हरिचरणामृत पानकर डकार ली उन्होंने। जो कुछ भूख बाकी थी, स्वप्न में वैष्णवी के अधर रस का पान कर उसे पूरा करने लगे। जहाँ पड़ाव पड़ा था, बहुत सुन्दर आम कानन था। उसके पास ही एक बड़ा टीला था। महेन्द्र ने सोचा कि इसी टीले पर यदि पड़ाव पड़े- तो कितना सुखद हो। मन में हुआ कि टीले को देख लेना चाहिये।

यह सोचकर महेन्द्र घोड़े पर चढ़कर धीरे-धीरे टीले पर चढ़ने लगे। अभी तक टीले पर आधा ही चढ़े थे, कि उनकी सन्तान सेना में एक युवक वैष्णव आ पहुँचा उसने सन्तनों से कहा,—"चलो-चलो, टीले पर चढ़ चलो। उसके समीप जो सैनिक खड़े थे' उन्होंने-पूछा,—"क्यों ?"

यह सुनकर वह योद्धा एक छोटी चट्टान पर खड़ा हो गया। उसने ललकारकर कहा:—"आओ, वीरो। आज इसी टीले पर चढ़कर सुधा चाँदनी की आनन्द और मधुर वन्य पुष्पों का सौरभ पान करते हुए शत्रुओं से अपना बदला लें- युद्ध करें।" सन्तानों ने देखा कि यह योद्धा और कोई नहीं, हमारे सेना-पति जीवानन्द हैं। इसपर सारी सेना "हरे मुरारे" कहती हुई गगनभेदी जयोल्लास से हुंकार करती हुई भालों पर बोझा

दे, उठ खड़ी हुई और जीवानन्द के पीछे २ टीले पर चढ़ने लगी। एक ने सजा हुआ घोड़ा जीवानन्द को लाकर दिया। दूर से महेन्द्र ने जो यह देखा, तो विस्मित हुए। सोचने लगे यह क्या? बिना कहे, यह सब क्यों चले आ रहे हैं?

यह सोचकर महेन्द्र ने तुरत घोड़े का मुँह फिराया और एड लगाते ही धूल का बादल उड़ाते हुए नीचे आये। सन्तान वाहिनी के अग्रवर्ती जीवानन्द को देखकर उन्होंने पूछा—यह क्या आनन्द ?"

जीवानन्द ने हँसकर उत्तर दिया - आज बड़ा आनन्द है। टीलेके उस पार एडवर्ड पहुँच गये हैं। टिले पर जो पहले पहुँचेगा, उसी की जीत होगी।"

इसके बाद जीवानन्द ने सन्तान सैन्य से कहा,—'पहचानते हो? मैं जीवानन्द हूँ। सहस्र-सहस्र शत्रुओं का प्राण वध किया है।"

तुमुल निनाद से दिगन्त काँप उठा। सैनिकों ने एक शब्द से कहा,—"पहचानते हैं, हम अपने सेनापति को पहचानते हैं।"

जवीनन्द—बोलो हरे मुरारे!"

जंगल का कोना-कोना काँप उठा, प्रतिध्वनित हुआ,—"हरे मुरारे!"

जीवानन्द—वीरो! टीले के उस पार शत्रु हैं। आज ही इस स्तूप के ऊपर विमल चाँदनी में सन्तानों का महरण होगा। जल्दीचढ़ो–जो पहले चढ़ेगा,उसी की जीत होगी। बोलो,–"वन्दे मातरम्।"

फिर प्रतिध्वनि हुई—वन्देमातरम्। धीरे धीरे सन्तान सैन्य पर्वत शिखरपर चढ़ने लगी। किन्तु उन लोगों ने सहसा देखा कि महेन्द्र बड़ी ही तेजी से शिखर से उतरे चले आ रहे हैं। उतरते

हुए महेन्द्र ने महानिनाद किया। देखते-देखते पर्वत शिखर पर नीलाकाशमें अंगरेजों की तोपें आ लगीं। उच्चस्तार में वैष्णवी सेना ने गाया।

"तुमी विद्या तुमी भक्ति,
तुम्हीं माँ बाहुते शक्ति,
त्वं हि प्राणाः शरीरे।"

लेकिन इसी समय अंगरेजों की तोपें गर्जन कर उठीं, आग उगलने लगीं। उस महानिनाद में गीत की आवाज गायब हो गयी। शत शत सन्तान सशस्त्र टीले पर गिरकर मर गये। बारंबार 'गुड़ुम-गुड़ुम' करती हुई अंग्रेजों की तोपें गर्जन कर सन्तान सेना का नाश करने लगीं। खेत में जैसे फसल काटी जाती है, उसी तरह सन्तान सैन्य कटने लगी। यह ऊपर की भयानक मार सन्तान सैन्य सह न सकी। तुरत भाग खड़ी हुई। जिसे जिधर राह मिली, वह उधर ही भागा। इसपर "हुर्रे हुर्रे" करती हुई ब्रिटिश वाहिनी सन्तानों का समूल नाश करने के लिये उतरने लगी। सङ्गीनें चढ़ाकर पर्वत से गिरने वाली भयंकर शिला की तरह शिक्षित गोरी फौज सन्तानों को खदेड़ती हुई तीव्र वेग से उतरने लगी। जीवानन्द ने महेन्द्र को सामने देखकर कहा—"बस, आज अन्तिम दिन है। आओ, यहीं मरें।"

महेन्द्र ने कहा—"मरने से यदि रण विजय हो, तो कोई हर्ज नहीं, किन्तु व्यर्थ प्राण गवाने से क्या मतलब? व्यर्थ मृत्यु वीर धर्म नहीं है।"

जीवा०—मैं व्यर्थ ही मरूँगा; लेकिन युद्ध करके मरूँगा।

यह कहकर जीवानन्द ने पीछे पलट कर कहा—"भाइयों! भगवान के नाम पर बोलो, कौन मरने को तैयार है?"

अनेक सन्तान आगे आ गये। जीवानन्द ने कहा—"यों नहीं

भगवान् की सपथ लो, कि जीवित न लौटेंगे।

जो लोग आगे बढ़े थे; पीछे हट गये। तब जीवानन्द ने कहा—"कोई नहीं? अच्छा तो देखो, मैं अकेला जाता हूँ।"

जीवानन्द ने अश्व पृष्ठ पर से ही बहुत पीछे खड़े महेन्द्र से कहा—"भाई, महेन्द्र! नवनीानन्द से मुलाकात हो, तो कह देना, कि परलोक में मुलाकात होगी।"

यह कहकर वह वीरश्रेष्ठ बाएँ हाथ में वल्लभ आगे किये हुए और दाहिने हाथ से बन्दूक चलाते, मुँह से 'हरे मुरारे, हरे मुरारे, कहते हुए तीर की तरह उस बरसती हुई आग को चीरते हुए टीले पर तीर की तरह आगे बढ़ने लगे। इस तरह महान् साहस का परिचय देते हुए और शत्रु क्षय करते हुए जीवानन्द अकेले अभिमन्यु की तरह शत्रु व्यूह में घुसते चले जा रहे थे। मानो एक मत्त हस्ती कमल वन को रौंदता चला जाता हो।

पलायनोद्यत सन्तान सैन्य को दिखाकर महेन्द्र ने कहा—"देखो, कायरों, भागने वालो! अपने सेनापति का साहस देखो। देखते रहो, देखने से जीवानन्द मर नहीं सकते।"

सन्तानों ने पलटकर जीवानन्द का अद्भुत कर्म प्रत्यक्ष देखा। पहले उन सबने देखा, फिर बोले—"स्वामी जीवानन्द मरना जानते हैं, तो हम नहीं जानते? चलो जीवानन्द के साथ वैकुण्ठ चलें।"

बस, यहीं से रण ने पलटा खाया। सन्तान सैन्य पलट पड़ी। पीछे भागनेवालों ने देखा कि सन्तान पलट रहे हैं, तो उन्होंने समझा कि सन्तानों की विजय हुई। अतः वे भी तुरत चल पड़े।

महेन्द्र ने दिखाया' कि जीवानन्द घुस गये हैं, अब दिखाई

नहीं पड़ते। उन्मत्त सन्तान सैन्य ने उतरी हुई अंग्रेज वाहिनी पर प्रचण्ड आक्रमण किया। अंग्रेजों के पैर उखड़ गये। वह लोग इस आक्रमण को सह न सके। उनकी सङ्गीने पलट कर भागने की तरफ दिखाई दीं। पीछे चढ़ती हुई सन्तान सैन्य उनका विनाश करती जा रही थी। भागी हुई सन्तान सैन्य अभीतक बराबर पलटी और रण में चढ़ती जाती थी।

महेन्द्र यह खड़े देख रहे थे। सहसा पर्वत शिखर पर सन्तान पताका उड़ती दिखाई दी। स्वयं सत्यानन्द महाप्रभु स्वयं चक्रपाणि विष्णु की तरह ध्वजा बाएं हाथ में लिये हुए और दाहने में रक्त से लाल तलवार लिये खड़े थे। यह देखते ही सन्तानों में अपूर्व बल आ गया। "हरे मुरारे!" का वह गगन में ही रव हुआ, कि वस्तुतः वसुन्धरा काँपती हुई नजर आई।

इस समय अंगरेज़ सैन्य दोनों दलों के बीच में थी। ऊपर प्रभु सत्यानन्द ने तोपों पर अधिकार कर लिया था, नीचे से सन्तान सैन्य पलटकर चढ़ती हुई मार रही थी।

महेन्द्र ने देखा कि ऊपर से "बन्दे मातरम्" का निनाद करते हुए सत्यानन्द अवशिष्ट ब्रिटिश वाहिनी के नाश के लिये उतरे। इधर से बची हुई सैन्य लेकर महेन्द्र ने सन्तानों को साहस दिलाते हुए भयंकर आक्रमण बोल दिया। मध्य टीले पर भयंकर युद्ध होने लगा। अंग्रेज दो चक्की में दिखाने वाले चने की तरह दिखने लगे। थोड़ी ही देर में एक भी ब्रिटिश वीर खड़ा न दिखाई दिया। मेदिन लाल हो गयी। रक्त की वस्तुतः नदी वह गयी।

वहां ऐसा भी कोई न बचा, जो वारन हेस्टिंग्सके पास खबर ले जाता।

———

सातवाँ परिच्छेद ।

पूर्णिमा की रात है। वह भीषण रणक्षेत्र इस समय स्थिर वह घोड़ों की टाप की आवाज, बन्दूकों आवाजकी और गोलों की वर्षा गायब हो गयी है। नकोई हुर्रे कहता है, न कोई हरे मुरारे। आवाज आती है, तो केवल कुत्ते और स्यारों की। रह-रहकर आवाजों का क्रन्दन सुनाई पड़ता है। किसी का पैर कटा है, किसी का हाथ कटा है, किसी का पंजर विद्ध हुआ है। कोई राम को पुकारता है, कोई 'गाड'। कोई पानी मांगता है, कोई मृत्यु का अह्वान करता है। उस चांदनी रात में श्यामा भूमि लाल वसन पहन कर बड़ी भयानक हो गयी थी। किसकी हिम्मत थी कि वहां जाता ?

साहस तो किसी का नहीं है, लेकिन उस निस्तब्ध भयंकर रात में भी एक रमणी अगम्य रणक्षेत्र में विचरण कर रही है। वह एक मशाल लिये हुई रणक्षेत्र में किसी को खोज रही है। हरेक शव का रौशनी में मुँह देखकर दूसरे के पास चली जाती है। कहीं कोई मृत देह अश्व के नीचे पड़ा रहता है, तो वहाँ मुश्किल से मशाल रख दोनों हाथ से अश्व हटाकर शव देखती और हताश हो आगे बढ़ जाती है। वह जिसे खोज रही थी, उसने उसे न पाया। अब वह मशाल छोड़ रक्तमय जमीन पर पछाड़ खा गिरकर रोने लगी। पाठक ! यह शान्ति है, वीर जीवानन्द के शव को खोज रही है।

शान्ति जिस समय जमीन पर गिरकर रो रही है, उसी समय उसे एक मधुरकरुण शब्द सुनाई पड़ा—"उठो, बेटी ! रोओ नहीं।" शान्ति ने देखा चाँदनी रात में सामने जटाजूटधारी प्रकाण्डकार महापुरुष खड़े हैं।

शान्ति उठकर खड़ी हो गयी। जो आये थे, उन्होंने कहा—"रोओ, नहीं बेटी! आओ जीवानन्द की देह मैं खोज देता हूँ।"

यह कहकर वह महापुरुष शान्ति को रणक्षेत्र के मध्य में ले गये। वहाँ शवराशि का एक स्तूप लगा हुआ था। शान्ति उसे हटा न सकी थी। उस महापुरुष ने स्वयं शवराशि हटाकर एक शव बाहर निकाला। शान्ति ने पहचाना, जीवानन्द की देह थी। सर्वाङ्ग क्षत विक्षत, रुधिर से सने हुए थे, शान्ति सामान्य स्त्री की तरह जोरों से रो पड़ी।

महापुरुष ने फिर कहा—रोओ नहीं बेटी! क्या जीवानन्द मर गये हैं? शान्त होकर उनका शरीर देखो, नाड़ी परीक्षा करो।"

शान्ति ने शव की नाड़ी देखी, नाड़ी का पता न था। वह बोले—"छाती पर हाथ रखकर देखो।"

शान्ति ने हृतपिण्ड पर हाथ रखकर देखा। गतिहीन ठण्डा था।

फिर महापुरुष ने कहा—"नाकपर हाथ रखकर देखो कुछ भी श्वास नहीं है?"

शान्ति ने देखा, किन्तु हताश हो गयी।

महापुरुष ने फिर कहा—"मुँह में उँगली डालकर देखो, कुछ गरमी मालूम पड़ती है?

आशामुग्धा शान्ति ने वह भी किया बोली—"मुझे कुछ पता नहीं लगता है।

महापुरुष ने बाएँ हाथ से शवपर हाथ रखकर कहा—"बेटी तुम घबरा गयी हो, देखो, अभी देह में हलकी गरमी है!"

अब शान्ति ने फिर नाड़ी देखी। देखा कि मन्द अतिमन्द गति है। विस्मित होकर उसने छाती पर हाथ रखा, मृदु धड़कन है। नाक पर हाथ रखकर देखा हलकी सांस है। शान्ति ने विस्मित होकर पूछा—"क्या प्राण था? या फिर से आ गया है?"

उन्होंने कहा—"भला ऐसा भी कभी हुआ है, बेटी! तुम इन्हें उठाकर तालाब के किनारे तक ले चल सकोगी? मैं चिकित्सक हूँ। इनकी चिकित्सा करूँगा।

शान्ति जीवानन्द को तालाब पर ले जाकर घाव धोने लगी। इसी समय उन महापुरुष ने लता आदि का प्रलेप लाकर घावों पर लगा दिया। इसके बाद वह जीवानन्द का शरीर सुहलाने लगे। अब जीवानन्द की श्वास प्रश्वास तेज हो गयी। कुछ ही क्षण में वह उठ बैठे। शान्ति के मुँह की तरफ देखकर उन्होंने पूछा—"युद्ध में किसकी विजय हुई?"

शान्ति ने कहा—"तुम्हारी विजय। इन महात्मा को प्रणाम करो?"

अब दोनों ने देखा कि वहाँ कोई नहीं है, किसे प्रणाम करें।

समीप ही संतान सेना का विजयोल्लास सुनाई पड़ रहा था। लेकिन शान्ति या जीवानन्द दो में से कोई भी न उठा। दोनों विमल ज्योत्स्ना में पुष्करिण तट पर बैठे रहे। जीवानन्द का शरीर अद्भुत औषधि-बल से जल्द ही ठीक हो गया। जीवानन्द ने कहा,—"शान्ति! चिकित्सक की दवा में अपूर्व गुण है। अब मेरे शरीर में जरा भी ग्लानि या कष्ट नहीं है बोलो अब कहाँ चलें? सन्तान सैन्य का जयोल्लास सुनाई पड़ रहा हैं।

शान्ति बोली,—"अब वहाँ नहीं। माता का कार्योद्धार हो गया है। अब यह देश सन्तानों का है। अब वहाँ क्या करने चलें।

जी०—जो छीना है, उसकी बहुबल से रक्षा तो करना होग।

शा०—रक्षा के लिये महेन्द्र हैं। तुमने प्रायश्चित्त कर सन्तान धर्म के लिये प्राण त्याग कर दिया था। अब इस पुनः प्राप्त जीवन पर सन्तानों का अधिकार नहीं है, हम लोग सन्तानों के लिये मर चुके हैं। अब हमें देखकर सन्तान लोग कह सकते हैं, प्रायश्चित्त के भय से यह लोग छिप गये थे। अब

विजय होने पर प्रकट हो गये हैं। राज्य भाग लेने आये हैं।

जी०—यह क्या शान्ति ? लोगों के अपवाद भय से अपना कर्त्तव्य छोड़ दें ? मेरा कार्य मातृ सेवा है। दूसरा चाहे जो कहे मैं मातृ सेवा करूँगा।

शा०—अब तुम्हें इसका अधिकार नहीं है। क्योंकि तुमने मातृसेवा के लिये अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया। अब यदि सेवा करोगे, तो तुमने उत्सर्ग क्या किया ? मातृ सेवा से वंचित होना ही प्रायश्चित्त प्रधान है। अन्यथा जीवन त्याग देना क्या कोई बड़ा काम है ?

जी०—शान्ति ! तुमने ठीक समझा। लेकिन मैं अपने प्रायश्चित्त को अधूरा न रखूँगा। मेरा सुख सन्तान धर्म में है. उस सुख से मैं अपने को वंचित करूँगा। लेकिन कहाँ जाऊँगा ? मातृ-सेवा त्याग कर घर जाने में क्या सुख मिलेगा ?

शा०—यह तो मैं कहती नहीं हूँ। हम लोग अब गृहस्थ नहीं हैं—हम दोनों ही संन्यासी रहेंगे। फिर ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे। चलो हम लोग देश पटन कर देव दर्शन करें।

जी०—इसके बाद ?

शा०—इसके बाद हिमालय पर कुटी निर्माणकर हम दोनों ही देवाराधना करेंगे। जिससे माता का मङ्गल हो, यही वर मांगेंगे।

इसके बाद दोनों ही उठ कर हाथ में हाथ दे उस ज्योत्सना मयी रात्रिको अन्तर्हित हो गये।

हाय माँ ? क्या फिर जीवानन्द सदृश पुत्र और शान्ति जैसी कन्या तुम्हारे गर्भ में आयेंगे ?

आठवाँ परिच्छेद।

स्वामी सत्यानन्द रणक्षेत्र में किसी से कुछ न कह कर आनन्दमठ में लौट आये। वहाँ वह गंभीर रात्रि में विष्णुमण्डप में बैठ कर ध्यानमग्न हुए। इसी समय उन चिकित्सक ने वहाँ

आकर दर्शन दिया। देखकर सत्यानन्द ने उठकर प्रणाम किया।

चिकित्सक बोले,—सत्यानन्द ! आज माघी पूर्णिमा है।

सत्यानन्द – चलिये मैं तैयार हूँ। किन्तु महात्मन् ! मेरे एक सन्देह को दूर कीजिये। मैंने जिस क्षण युद्ध•जयकर सनातनधर्म निष्कण्टक किया—उसी समय मेरे प्रति यह प्रत्याख्यान का सन्देश क्यों हुआ ?

जो आये थे उन्होंने कहा,—"तुम्हारा कार्य सिद्ध हो गया, मुसलिम राज्य ध्वंस हो चुका। अब तुम्हारी यहाँ कोइ जरूरत नहीं अनर्थक प्राणिहत्या की आवश्यकता नहीं।"

सत्य०—मुसलिम राज्य ध्वंस अवश्य हुआ है किन्तु अभी हिन्दू राज्य स्थापित हुआ नहीं है अभी भी कलकत्ते में अङ्गरेज प्रबल हैं।

वह—अभी हिन्दू राज्य स्थापित न होगा। तुम्हारे रहने से अनर्थक प्राणी हत्या होगी अतएव चलो।

यह सुनकर सत्यानन्द तीव्र मर्म पीड़ा से कातर हुए। बोले— "प्रभो: यदि हिन्दू राज्य स्थापित न होगा, तो कौन राज्य होगा ? क्या फिर मुसलिम राज्य होगा ?"

उन्होंने कहा,—नहीं अब अंगरेज राज्य होगा।"

सत्यानन्द की दोनों आँखों से जलधारा वहने लगी। उन्होंने उपरिस्थिता, जननी जन्म भूमि की प्रतिभा की तरफ देख हाथ जोड़ कर कहा,—"हाय माता ! तुम्हारा उद्धार कर न सका। फिर म्लेछों के हाथ में पड़ेगी। सन्तानों के अपराध को क्षमा करदो माँ ! रणक्षेत्र में मेरी मृत्यु क्यों न हो गयी ?

महात्मा ने कहा,—"सत्यानन्द कातर न हो। तुमने बुद्धि विभ्रम से दस्युवृति द्वारा धनसंचय कर रण में विजय ली है। पापका कभो पवित्र फल नहीं होता। अतएव तुमलोग देशोद्धार कर नहीं कर सकोगे। और अब जो कुछ होगा, अच्छा ही होगा अंगरेजों के विना राजा हुए सनातन धर्म का उद्धार हो नहीं

सकेगा। महापुरुषों ने जिस प्रकार समझाया है, मैं उसी प्रकार समझाता हूँ, ध्यान देकर सुनो। तेतीस कोटि देवताओं का पूजन सनातनधर्म नहीं है। वह एक तरह का लौकिक अपकृष्ट धर्म है। उसके प्रभाव से प्रकृत सानतनधर्म म्लेच्छ जिसे हिन्दूधर्म कहते हैं—लुप्त हो गया। प्रकृत हिन्दू धर्म ज्ञानात्मक है—कर्यत्मक नहीं। जो अन्तर्विषयक ज्ञान है—वही सनातन धर्म का प्रधान अङ्ग है। लेकिन विना पहले वहिर्विषयक ज्ञान हुए अन्तर्विष्यक ज्ञान असम्भव है। स्थूल देखे विना सूक्ष्म की पहचान हो नहीं सकती। बहुत दिनों से इस देश में वहिर्षियक ज्ञान लुप्त हो चुका है—इसी लिय वास्तविक सनातनधर्म भी लोप हो गया है। सनातनधर्म के उद्धार के लिये पहले वहिर्विपयक ज्ञान प्रचार की आवश्यकता है। इस देश में इस समय वह बहिर्विपयक ज्ञान नहीं है—सिखाने वाला भी कोई नहीं। अतएव बाहरी देशों से बाहिर्विषयक ज्ञान भारत में फिर लाना पड़ेगा। अंगरेज उस ज्ञान के प्रकाण्ड पंडित हैं—लोक-शिक्षा में वड़े पटु हैं। अतः अंगरेजों के ही राजा होने से। अंगरेजी की शिक्षा से स्वतः वह ज्ञान उत्पन्न होगा। जब तक उस ज्ञान से हिन्दू, ज्ञानवान गुणवान और वलवान न होंगे, अंगरेज राज्य रहेगा। अंगरेज राज्य में प्रजा सुखी होगी (१) निष्कंट धर्माचरण होंगे। अंगरेजों से विना युद्ध किये ही निरस्त होकर मेरे साथ चलो।

सत्यानन्द ने कहा,—महात्मा! यदि ऐसा ही था—अंगरेजों को ही राजा बनाना था तो हम लोगों को इस कार्य में प्रवृत्त करने की आवश्यकता थी?

महापुरुष ने कहा—"अंगरेज उस समय वनिया थे—अर्थ संग्रह में ही उनका मन था। इस सन्तानों के कारण ही वे राज्य शासन हाथ में लेंगे। क्योंकि बिना राजत्व किये अर्थ संग्रह हो नहीं सकता। अंगरेज राजदंड लें, इसी लिये सन्तान विग्रह हुआ है। अब आओ—स्वयं ज्ञानलाभ कर दिव्य चक्षुओं

से सब देखो समझो।

सत्या०—हे महात्मन्! मैं ज्ञानलाभ की आकांक्षा नहीं रखता। ज्ञान की मुझे आवश्यकता नहीं। मैंने जो व्रत लिया है, उसी का पालन करूँगा। आशीर्वाद कीजिये कि मेरी मातृ-भक्ति अचल हो।

महापुरुष—व्रत सफल हो गया—तुमने माता का मंगल साधन किया—अंगरेज राज्य तुम्हीं लोगों द्वारा स्थापित समझो! युद्ध विग्रह का त्याग करो—लोग कृषि में नियुक्त हों। पृथिवी शस्यशालिनी हो, लोगों की श्रीवृधि हो।

सत्यानन्द की आँखों से आँसू निकलने लगे, बोले,—"माता को शत्रु रक्त से शस्यशालिनी करूँ?

महापुरुष—शत्रु कौन है? शत्रु अब कोई नहीं है। अंगरेज मित्र हैं। फिर अंगरेज से युद्ध कर अन्त में विजयी हो ऐसी अभी किसीकी शक्ति नहीं।

सत्यानन्द—न रहे। यही माता के सामने अपना बलिदान चढ़ा दूँगा।

महापुरुष—अज्ञानवश! चलो पहले ज्ञान लाभ करो (हिमलय शिखर पर मातृमन्दिर है वहीं तुम्हें माता की मूर्ति प्रत्यक्ष होगी।)

यह कह कर महापुरुप ने सत्यानन्द का हाथ पकड़ लिया केसी अपूर्व शोभा थी? उस गम्भीर निस्तब्ध रात्रि में प्रकाण्ड चतुर्भुज विष्णु प्रतिमा के सामने दोनों महापुरुष हाथ पकड़े खड़े थे। किसने किसे पकड़ा है? ज्ञान ने भक्ति का हाथ पकड़ा है, धर्म ने कर्म का हाथ पकड़ा है, विसर्जन ने प्रतिष्ठा को पकड़ा है। यह सत्यानन्द ही शान्ति है—महापुरुष ही कल्याणी है,—सत्यानन्द प्रतिष्ठा है—महापुरुष विसर्जन है।

विसर्जन ने आकर प्रतिष्ठा को साथ ले लिया।

इति शुभम्।